चींटी-चींटों की दुनिया

[चींटी-चींटों के अद्भुत जीवन की कहानी]

लेखक

जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पादक 'विज्ञान'

कि ता ब म ह ल

इ ला हा बा द

प्रथम संस्करण, १९५५

प्रकाशक—किताब महल, ५६ जीरो रोड, इलाहाबाद ।

मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ ए. जीरो रोड इलाहाबाद ।

दो शब्द

चींटी-चींटों या पिपीलिकाओं को हमारे देश में तो चीनी या आटा खिलाकर ही अपने कर्तव्य की इति-श्री समझी जाती है किन्तु विदेशों में इन कीटों की विचित्र संघबद्ध व्यवस्था, बिल या घोंसला-निर्माण, संघ के उपयोग के लिए एक विशेष उदर में मधु-संचय वृत्ति तथा एक दूसरे को इस संघीय उदर का मधुपान कराने की विचित्र घटनाओं का साधकों ने निरीक्षण किया है। उनकी अनुसंधानित पिपीलिका-जगत की जीवनकथाएँ इस पुस्तक में वर्णित करने का प्रयत्न किया गया है। कीटों या जन्तुओं के जीवन, रहन-सहन, निवास, आवागमन आदि की खोज केवल विशेषज्ञों या वैज्ञानिकों का ही विषय नहीं है बल्कि साधारण जन भी इनके निरीक्षणों द्वारा यथेष्ट ज्ञानवृद्धि करते पाये जाते हैं। पुरानी रूढ़ियों तथा आस्थाओं से छुटकारा पाकर वैज्ञानिकता की ओर प्रवृत्त होने में कभी हमारे देशवासी भी अवश्य अग्रसर हो सकेंगे, इन्हीं आशाओं से सरल विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकें प्रस्तुत की जा रही हैं। उन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप यह पुस्तक भी प्रकाशन का अवसर पा सकी है।

जगपति चतुर्वेदी

विषय-सूची

चींटी-चींटों की दुनिया

चींटी-चींटों का संसार हमसे बहुत अधिक अपरिचित नहीं है। छोटे आकार होने के कारण चींटी तथा बड़े आकार होने के कारण चींटे नाम से इसकी जातियाँ प्रसिद्ध हैं परन्तु वैज्ञानिक इन सबको कुछ व्यापक गुणों के कारण एक वंश के अंतर्गत मानते हैं जिसका नाम पिपीलिका वंश (फार्मिसाइडी) रक्खा गया है। हम चींटों की चर्चा उतनी अधिक नहीं पाते, परन्तु नन्हीं-सी चींटी के सतत अध्यवसाय एवं विचित्र सामाजिक व्यवस्था के संबंध में साधारण पाठ्य-ग्रंथों में भी लेख और कविताएँ संगृहीत पाते हैं। ये लेख कुछ वैज्ञानिकों के प्रारंभिक कार्यों के कुछ आधार लेकर तथा साधारण रूप में उनकी बाह्य गतिविधि देखकर हमारी पूर्व पीढ़ी के कुछ लेखकों द्वारा लिखे होते हैं। जहाँ तक हमारे देश की प्राचीन साहित्य-परम्परा या वैज्ञानिकता का प्रश्न है, इस विषय को हम अछूता ही कह सकते हैं।

आधुनिक काल में चींटे-चींटी जगत के आन्तरिक जीवन की गवेषणा करने में संसार के शोधकों ने आश्चर्यजनक कार्य किया है। हम लोग आज भी ऐसे शोधकार्यों में अन्य उन्नत देशों के प्रयत्नों के सामने निष्क्रिय से ही हैं। अतएव पिपीलिका-जगत के आन्तरिक जीवन, स्वभाव, कौशल, बुद्धि तथा सामाजिकता के संबंध में संसार के शोधकों के जो प्रयत्न हुए हैं, उनके फलस्वरूप हमें आज इन छोटे जन्तुओं की यथार्थ जीवन-कथा बहुत कुछ सत्य रूप में ज्ञात हो सकी है। किन्तु आज भी जितनी पिपीलिका

जातियों का ज्ञान हो सका है, उनमें से थोड़ी जातियों के जीवन का ही पर्यवेक्षण तथा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव हो सकता है। संसार के शोधकर्ता जितने मनोयोग तथा कष्टसहिष्णुता के साथ इन क्षुद्रकाय जीवों की जीवन-कथा जानने में संलग्न हो सके हैं, उनके ज्ञात तथ्य भी बड़े ही विस्मयजनक हैं। उनके द्वारा ज्ञात तथ्यों से हमें कितनी ही पुरानी भ्रान्तियों को दूर करने तथा नवीन सत्य ज्ञात करने में सफलता प्राप्त हो सकी है। अतएव जिस सूक्ष्म जीव-जगत की कथा हम स्वयं अपने पर्यवेक्षणों तथा शोधों द्वारा आगे बढ़ाने में संलग्न नहीं होते, अन्य-देशीय विज्ञान-शोधकों द्वारा उसके संबंध की ज्ञात की हुई कथा को जानना तो हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक ही है। अतएव हम इस संबंध में कौतूहलवृद्धि के लिए इन जन्तुओं की वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात जीवन-कथा का इस पुस्तक में वर्णन करेंगे।

हम लोगों को प्राय: यह पढ़ने का अवसर मिलता है कि पिपीलिकाएँ कितनी अधिक परिश्रमी होती हैं। उनके जीवन में अधिकांशत: अध्यवसाय ही पाया जाता है। वे विलक्षण सामाजिकता भी रखती हैं जिनकी तुलना मानव-समाज नहीं कर सकता। परन्तु आज के नवीन शोधों द्वारा हमारी ये मान्यताएँ असत्य ही सिद्ध हो सकी हैं। हम चींटे-चीटियों को दृष्टि के सम्मुख धरातल पर सतत चलते-फिरते सा ही देखते हैं किन्तु वैज्ञानिक शोधक हमें निरीक्षणों द्वारा स्पष्ट बतलाते हैं कि पिपीलिकाएँ इतनी अध्यवसायी कभी नहीं होतीं कि हमारी श्रद्धा की कोई महान वस्तु हों। उनका तो अधिकांश समय बिलों में कहीं एकाकी और कहीं सामूहिक रूप में ऊँघते, अपने शरीर का स्वयं खरहरा या कंघा द्वारा चिकना और स्वच्छ रूप बनाने या दूसरों का शरीर स्वच्छ करते रहने में व्यतीत होते देखा जा सकता है। सामाजिकता की

जहाँ तक बात है, वह एक रूप में उत्तम तो कही जा सकती है, परन्तु एक तो सभी पिपीलिकाएँ उत्कृष्ट सामाजिकता की व्यवस्था ही रखते नहीं कही जा सकतीं, दूसरे उनकी जो कुछ भी सामाजिकता है, वह एक दर्जे तक पहुँच कर आज आगे विकास करने में अक्षम ही है, परन्तु मनुष्य जो भी सामाजिकता का स्तर रखता है, वह सतत विकासशील है।

आज चींटी-चींटों (पीपीलिकाओं) की पन्द्रह हजार से भी अधिक जातियाँ ज्ञात हैं। प्रतिवर्ष ३०० नवीन जातियों की खोज होती जा रही है। इन सब भेद-विभेदों से पिपीलिकाओं का जितना अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है, वह जीव-जगत की विचित्र कथा में यथेष्ट वृद्धि करने में समर्थ होता है। पक्षी और मनुष्य को छोड़कर पिपीलिकाएँ समस्त जीवजगत् में अपनी सामाजिकता के कारण बहुत ही उच्च स्थान रखती हैं। इनके साथ ही कुछ अन्य सामाजिक जीवों को भी ऊँचा स्थान प्राप्त करते पाया जाता है।

वैज्ञानिक शोधकर्ताओं ने मधुमक्खियों, बर्रे तथा मक्खियों आदि के पृथक्-पृथक् वंशों की गणना की है। इन्हीं की तरह एक पृथक् वंश पिपीलिकाओं का भी होता है। मधुमक्षिका वंश, बर्रे या बरट वंश, मक्षिका वंश तथा पिपीलिका वंश को उन जन्तुओं में गिना जाता है जो झिल्ली के पङ्ख रखने वाले (झिल्ली पङ्खीय) कहलाते हैं। हमें इन जन्तुओं में चींटे-चींटी में साधारणतया झिल्ली-पङ्ख देखने का अवसर नहीं मिलता, परन्तु यथार्थतः इनके जनक नर-मादा, जिन्हें राजा और रानी पिपीलिका कहा जाता है, प्रायः आजीवन या सन्तानोत्पादन की तैयारी या सुहाग उड़ान के समय झिल्ली-पङ्खमय पाया जाता है। कुछ जातियों की पिपीलिकाओं में नर और मादा दोनों ही झिल्ली-

पङ्खीय होते हैं। कुछ में नर या मादा में से कोई एक ही झिल्ली-पङ्खमय होता है किन्तु सभी पिपीलिकाओं में रानी ही सब से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। नई बस्ती स्थापित करना उसी का जीवन-व्यापार होता है। एक बार ही नर के संयोग से यथेष्ट शुक्र या वीर्यकोष की राशि प्राप्त कर वह अपने शेष दो-चार या दस बारह वर्ष तक के जीवन तक अंडे दे देकर उनका इस संचित शुक्र भंडार से ही सेचन कर सन्तान-वृद्धि का व्यापार चला पाती है। इस कारण वह अपने पङ्ख प्रथम सुहाग-उड़ान के पश्चात् गिरा कर निष्पङ्ख ही जीवन बिताती है।

इनकी विचित्र कथाओं को सुनने के पूर्व हमें पिपीलिकाओं के मुख्य अनुवंशों का कुछ उल्लेख करना उचित जान पड़ता है। पिपीलिकाओं के प्राचीन अवशेष हमें चीड़ के राल (गंधाबिरोजा) या उसके प्राचीन दृढ़ीकृत रूप अम्बर में द' पड़े प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में कहीं घूमते रहने पर इनके दल के ऊपर चीड़ के वृक्षों से स्रवित इन रालों (गोंदों) के गिरने से इनका शरीर उसी में दबा पड़ा रह गया। अतएव आज लाखों, करोड़ों वर्ष पूर्व से इनके अवशेष हमें रक्षित मिलते हैं। उन्हें देख कर आज यह कह सकना सम्भव हो सका है कि आज से कितने अधिक दिनों पूर्व इनकी सर्व प्रथम जाति धरातल पर विद्यमान रही होगी। कालान्तर के स्तरों में इनके प्रस्तरावशेषों (रक्षित अवशेषों) द्वारा अन्य विकसित जातियों का भी पता लगता है। अतएव आज इनकी विकास-कथा भी हमें ज्ञात हो जाती है।

पिपीलिकाओं के विकास की कथा एक स्वतन्त्र कथा ही है। नवीनतम जातियों की जो पिपीलिकाएँ पाई जाती हैं उनमें एक अद्भुत गुण पाया जाता है। वे अपने विशेष उदर में रक्षित खाद्य रस का पान अन्य दलगत सदस्यों को कराकर अपनी उदारता

और सामाजिकता का सुन्दर परिचय देती हैं। इस क्रिया को खाद्य-रस-वमनक्रिया कहा जा सकता है। यह क्रिया केवल इन पिपीलिकाओं की ही विशेषता है।

प्राचीन प्रस्तरावशेषों में पिपीलिकाओं के विभिन्न अनुवंशों के क्रमिक विकास के प्रमाण मिलते हैं। उनके जो वर्तमान रूप मिलते हैं उनमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्राचीनतम अनुवंशों की वर्तमान जातियाँ खाद्यरस-वमनक्रिया नहीं करतीं। इस कृत्य के लिए हम सभी पिपीलिकाओं में निजी उदर से पृथक रूप का उदर विद्यमान पाते हैं। इसे पिपीलिका संघ के लिए खाद्य-रस संचित करने का भंडार कह सकते हैं। अतएव इसे संघोदर (क्राप) नाम दिया जाता है। इस विशेष उदर से निजी उदर का सम्बन्ध अवश्य रहता है, परन्तु संघोदर का रक्षित खाद्य-रस एक प्रकार से सङ्घ की थाती समझा जाता है। बहुत ही अधिक आवश्यकता होने पर बुभुक्षा-निवारण के लिए ही सङ्घोदर का संचित खाद्य-रस निजी उदर में पहुँचाया जा सकता है किन्तु किसी भी सजातीय पिपीलिका या सङ्घपोषित जन्तु के लिए इस सङ्घोदर खाद्य-रस का बड़ी उदारतापूर्वक प्रदान किया जाता है। अतएव खाद्यरस-वमनक्रिया को सङ्घोदर-पोषण या सङ्घोदर-खाद्य-रस-पान नाम देना अधिक उपयुक्त हो सकता है। प्राचीनतम अनुवंशों की वर्तमान पिपीलिकाएँ सङ्घोदर की व्यवस्था तो अवश्य रखती हैं, परन्तु वे उसका रसपान अन्य सजातीयों को नहीं करातीं। इसके विपरीत अपेक्षाकृत नवीन अनुवंशों की पिपीलिकाएँ ऐसी क्रिया अनिवार्यतः रखती हैं। इस कारण उन्हें थोड़े शब्दों में सङ्घोदर-पोषी नाम से व्यक्त किया जाता है।

पिपीलिकाओं के अनुवंशों पर कुछ विहंगम दृष्टि डालने के लिए उनकी भिन्न-भिन्न समयों में उत्पत्ति का उल्लेख उचित हो

सकता है। यहाँ पर हम केवल थोड़ी चर्चा कर ही सन्तोष करेंगे। पृथ्वी की कथा जानने वाले विद्वान शिलाओं के स्तर, उनकी आयु, प्रस्तरावशेषों के प्रमाण से विभिन्न जीवों की विकास-कथा का अध्ययन कर पृथ्वी की पपड़ी के बनने के काल निर्धारित कर सके हैं। आज से २२ करोड़ वर्षों पूर्व से भी पूर्व के समय को प्राचीन जन्तुओं का युग कहकर पुराजन्तुक युग नाम देते हैं। उस समय तक संसार में प्राय: जलचरों और उभयचरों का ही प्रसार हो चुका था। पुराजन्तुक युग के अन्त के बाद जिन युगों और कालों का प्रसार माना जाता है उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

नाम		समय
मानव युग (प्लीस्टोसीनी)—[आधुनिक काल]		दस लाख वर्षों पूर्व तक
नवजन्तुक या स्तनपायी युग (कैनोजोइक या टर्टियरी)	प्लायोसीनी काल—[द्वितीय उत्तर नवजंतुक]	डेढ़ करोड़ वर्षों पूर्व तक
	मायोसीनी काल—[प्रथम उत्तर नवजंतुक]	साढ़े तीन करोड़ वर्षों पूर्व तक
	ओलिगोसीनी काल—[द्वितीय पूर्व नवजंतुक]	पाँच करोड़ वर्षों पूर्व तक
	इओसीनी काल—[प्रथम पूर्व नवजंतुक]	सात करोड़ वर्षों पूर्व तक
सरीसृप या मध्य-जंतुक युग (मेसो-जोइक	क्रिटेशश काल—[उत्तर मध्यजंतुक]	बारह करोड़ वर्षों पूर्व तक
	जुरासिक काल—[मध्यवर्ती मध्यजंतुक]	पंद्रह करोड़ वर्षों पूर्व तक
	ट्रयासिक काल—[पूर्व मध्यजंतुक]	उन्नीस करोड़ वर्षों पूर्व तक

पिपीलिकाओं की आधुनिक जातियाँ आठ अनुवंशों में विभाजित की गई हैं। विज्ञान की प्रगति से इन अनुवंशों तथा अन्य नवीन ज्ञात जातियों के वर्गीकरण, नामकरण आदि में परिवर्तन हो सकता

है। आज तक अनुसंधान करने के परिणामस्वरूप जो अनुवंश माने गए हैं उनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) आद्य या कंदरा पिपीलिका अनुवंश (पोनेराइनी)
(२) मध्य पिपीलिका अनुवंश (सेरा पेचाइनी)
(३) सैन्य पिपीलिका अनुवंश (डोरिलाइनी)
(४) भीम पिपीलिका अनुवंश (मिरमिसाइनी)
(५) कृश सैन्य पिपीलिका अनुवंश (लेप्टानिल्लाइनी)
(६) दिव्य पिपीलिका अनुवंश (स्यूडो मिरमाइनी)
(७) सैनिक भंगी पिपीलिका अनुवंश (डोलि चोडेराइनी)
(८) श्रेष्ठ पिपीलिका अनुवंश (फोर्मिसाइनी)

पिपीलिका-जीवन के सम्बन्ध में जहाँ बहुत-सी भ्रांतियाँ हैं वहाँ बहुत-सी विचित्रताएँ भी हैं। कीट-जगत में सामाजिकता की भावना का अध्ययन करने वाले विद्वानों का मत है कि अनु-सामाजिकता के तो विकास के अनेक अवसर कीट-जगत में आते रहे हैं परन्तु यथेष्ट सामाजिकता के स्तर तक कुछ ही कीट वर्गों को अवसर मिला है। अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय के कीट विज्ञान के आचार्य श्री विलियम मार्टन ह्वीलर के मत के अनुसार झिल्लीपंखीय कीट वर्ग (हाइमोनोप्टेरा) तथा श्वेत पिपीलिका (दीमक) वर्ग (आइसोप्टेरा) में यथार्थ सामाजिकता के स्तर को प्राप्त करने की दस पृथक सफलताएँ पाई जाती हैं। इनमें भी झिल्लीपंखीय वर्ग में वरट वंश के कीटों ने पाँच पृथक समयों में पूर्ण सामाजिक स्थिति प्राप्त की; मधुमक्षिकाओं को तीन बार सामाजिकता के स्तर तक पहुँचने में सफलता मिली। पिपीलिकाओं ने केवल एक बार ही सामाजिकता का स्तर प्राप्त किया। इन कीटों में सामाजिकता और श्रम-विभाग के विचित्र ही उदाहरण मिलते हैं। श्रम-विभाग का

अर्थ तो स्पष्ट ही है। एक विशेष कार्य को एक जाति के कीटों का एक गुट्ट ही करता है। वह दूसरे काम में हाथ नहीं लगाता। जैसे चारा लेने बाहर जाना। अंडों की सेवाशुश्रूषा करना, बिल की रक्षा करना आदि पृथक-पृथक प्रकार के कार्य हैं। इनको पृथक-पृथक दल या गुट्ट के सजातीय कीट ही करते हैं। यह उनकी पृथक-पृथक श्रेणियाँ कही जाती हैं। यह श्रेणी-विभाग या वर्ण-व्यवस्था बर्रे में कदाचित दो-तीन बार, मधुमक्खी में निस्सन्देह ही दो बार स्वतन्त्र रूप में उत्पन्न हो चुकी है। दीमकों ने इन सबसे पृथक रूप में ही अपनी वर्ण-व्यवस्था स्वतन्त्र रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

वैज्ञानिकों के मत से मनुष्य का विकास प्लायोसीनी (आज से डेढ़ करोड़ वर्षों पूर्व) या मायोसीनी (आज से साढ़े तीन करोड़ वर्षों पूर्व) काल में हुआ। इन कालों को द्वितीय उत्तर नव-जन्तुक तथा प्रथम उत्तर नवजन्तुक काल नाम से भी पुकार सकते हैं। किन्तु सामाजिक पिपीलिका, मधुमक्षिका, तथा बर्रे और दीमक को बाल्टिक के अंबरों में पाया जाता है जो स्वीडेन नाम से आज पुकारे जानेवाले देश में पाँच करोड़ वर्षों पूर्व ओलिओसीनी (द्वितीय पूर्व नवजन्तुक) काल में चीड़ की गोंद चूते रहने का परिणाम ही है। श्री विलियम मार्टन ह्वीलर के विचार में उस समय ही इसके शरीर का विकास हो गया था। तब से अब तक इनके शरीर की रचना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उस समय इनमें सामा-जिकता का प्रचार हो गया था तथा वर्णव्यवस्था प्रचलित हो गई थी। आज की बहुत-सी जातियों का उसी समय श्रीगणेश हो चुका था तथा उस समय की कुछ जातियों का तो आज की विद्यमान जाति से विभिन्नता बता सकना कठिन ही हो सकता है। अनुमान है कि बहुत-सी झिल्लीपंखीय जातियाँ कम से कम क्रिटेशश काल

(आज से बारह करोड़ वर्षों पूर्व तक) में ही पूर्ण सामाजिक बन गई थीं।

इस प्रकार मनुष्य के सामाजिक बनने का जो समय माना जा सकता है उससे पाँच गुना अधिक पुराना समय झिल्लीपंखीय कीटों का सामाजिक रूप बनने का मिलता है।

चींटी-चींटों की सामाजिकता पर एक दृष्टि डाल कर हम आज के समाजवाद की झाँकी पाकर बड़े आश्चर्य में पड़ते हैं। इनका ऐसा समाज है जिसमें कोई छोटे-बड़े पद पर आसीन नहीं। सब दलों या वर्णों के काम बटे हुए हैं। किसी की भी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं। जो कुछ भी है, वह उनके सङ्घ के प्रत्येक सदस्य का ही है। इस तथ्य का निरीक्षण कुछ पूर्व समय के विद्वानों ने भी किया था, परन्तु उस समय कलों का युग प्रचारित न होने से वे मनुष्य समाज में समाजवाद की चलन का कुछ स्वप्न भी न देख सकते थे।

आदिम पिपीलिकाओं का समाज हमें सीमित संख्या के दस-पन्द्रह सदस्यों का ही मिलता है। यथार्थ में दो विभागों में पिपीलिका-जगत को बटा कहा जा सकता है। एक विभाग 'समाजप्रिय' होता है और दूसरा विभाग असामाजिक या आंशिक सामाजिक होता है। इस कारण सभी पिपीलिकाओं को अत्यन्त उत्कृष्ट समाजप्रिय या समाजबद्ध कहना एक मिथ्या कल्पना ही है। वस्तुतः इनकी सामाजिकता के बहुत अधिक विभिन्न स्तर होते हैं।

आदिम पिपीलिकाओं को दूसरे विभाग (आंशिक समाजप्रिय) का ही कहा जा सकता है। आद्य पिपीलिका या कन्दरा पिपीलिका अनुवंश (पोलेराइनी) तथा मध्य पिपीलिका अनुवंश (सेरापेचाइनी) इसी विभाग के अन्तर्गत हैं। मध्यपिपीलिका अनुवंश, आद्य पिपीलिका अनुवंश तथा सैन्य पिपीलिका अनवंश

(डोरिलाइनी) के मध्यस्थान का माना जाता है। सैन्य पिपीलिका का प्रसार भारत, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता है। श्रेष्ठ पिपीलिका अनुवंश (फोर्मिसाइनी) सबसे बड़ा तथा विभिन्न रूप रखने वाला अनुवंश है। कृश सैन्य-पिपीलिका अनुवंश सूक्ष्मदर्शकीय या क्षुद्र पिपीलिकाओं का ही एक छोटा अनुवंश है। दिव्य पिपीलिका अनुवंश (स्यूडोमिरमाइनी) अपने सुन्दर कृश आकार के लिए ही प्रसिद्ध है। यह वृक्षों के तने तथा छाल के मध्य जीवनयापन करता है। सैनिक पिपीलिका अनुवंश (डोलिचोडेराइनी) हल्के आयुधधारी, अत्यन्त तीव्रगामी पिपीलिकाओं का अनुवंश हैं। यह स्वच्छता का कार्य करने से सैनिक भंगी नाम भी पाता है। इसका प्रसार सारे संसार में पाया जाता है। पिपीलिकाओं के मुख्य अनुवंशों का यह साधारण परिचय है।

पिपीलिकाओं को धरातल के ऊपरी भाग तथा कुछ इञ्चों की गहराई तक के भाग का अधीश्वर कहना चाहिए। ये संसार में सबसे अधिक प्रसारित तथा सफल कीट हैं। इनका सामाजिक तथा बौद्धिक रूप में यथेष्ट विकास पाया जाता है। इनके निवास के लिए प्रायः यथेष्ट स्थान न मिलने से जीवन-संघर्ष या अधिकार-प्रसार के लिए विभिन्न दलों में युद्ध छिड़ा पाया जाता है।

पिपीलिकाओं के विभिन्न रूप तथा स्वभाव पाए जाते हैं। कुछ जातियाँ खेतिहर कहलाती हैं। कुछ दास बनाने वाली जातियाँ होती हैं। कुछ योद्धा जातियाँ होती हैं। कुछ जातियों को कुकुरमुत्ते या फफूँद (कवक) उत्पन्न कर उसका ही आहार करते पाया जाता है। कुछ पिपीलिकाओं को दूसरी जाति की पिपीलिकाओं का परोपजीवी बना पाया जाता है। कुछ जातियाँ ऐसी होती हैं जो चोरी कर ही अपना निर्वाह करती हैं। कुछ पिपीलिकाओं की जातियाँ दीमकों को अपना आहार बनाती हैं, परन्तु कुछ अन्य

पिपीलिका की जातियाँ इसके विपक्ष ऐसी भी होती हैं जो दीमकों के विवर में आश्रय लेकर उनकी रक्षा के लिए अन्य पिपीलिका जातियों से मुठभेड़ करती हैं। भाड़े के सैनिक समान रहकर वे दीमकों द्वारा आहार प्राप्त करती हैं।

आकार की दृष्टि से पिपीलिकाओं में इतनी अधिक बहुरूपता है कि आश्चर्य होता है। कुछ चीटियाँ १/२५ इञ्च लम्बी ही होती हैं किन्तु कुछ बड़े आकार की पिपीलिकाएँ (चींटे) डेढ़ इञ्च लम्बी होती हैं। कुछ को इतने अधिक आयुधों से सम्पन्न पाया जाता है कि उन्हें कछुवों का सा भारी रूप मिला होता है परन्तु कुछ ऐसी हल्की होती हैं कि तीव्र गति से दौड़ने पर भूतल से उठ सी जाती हैं।

पिपीलिकाओं की विभिन्न श्रेणी एक जाति में ही होने से हम श्रेणीविभाग या वर्णव्यवस्था का जो रूप पाते हैं उसमें एक श्रेणी श्रमिकों की होती है। वे प्रायः शिखंडी या नपुंसक मादा पिपीलिकाएँ होती हैं। उनका कार्य केवल जन्म धारण कर जीवन भर सेवा-व्रत धारण किए रहना है। दूसरी श्रेणी मादा की होती है जो अण्डे देकर संतान उत्पन्न कर सकती है। इसे 'रानी' नाम से प्रसिद्ध पाया जाता है। तीसरी श्रेणी नर पिपीलिकाओं की होती है। ये तीनों ही श्रेणियाँ अधिकांश जातियों की पिपीलिकाओं में होती हैं।

रानी पिपीलिका के संबंध में एक मिथ्या धारणा पाई जाती है कि प्रत्येक विवर के पिपीलिका-समाज में केवल एक रानी होती है, किन्तु यह खोजों द्वारा असत्य सिद्ध हुआ है। मधुमक्षिकाओं में एक ही रानी पाई जाती है। उड़ाकू जीवन व्यतीत करने के कारण मधुमक्षिकाओं का निर्वाह एक रानी से हो सकता है। उनका निवास ऊँचे स्थलों, वृक्षों आदि पर होने से छत्ते के नष्ट होने का

उतना अधिक भय नहीं रहता। परन्तु पिपीलिकाएँ तो भू-जीवी हैं। आँधी-पानी से उनके विवर की रक्षा हो भी जाय तो कहीं जानवरों या मनुष्यों के पैर तले विवर के रौंद जाने का भी भय कम नहीं होता। अन्य कितनी ही विपत्तियाँ उनके विवर का नाश कर उनके वंश-क्षय का अवसर ला सकती हैं। अतएव कुछ अपवादों को छोड़कर उनके प्रत्येक विवर में एक से अधिक रानी पिपीलिकाओं या अंडा दे सकने वाली मादाओं की व्यवस्था होती है।

कुछ पिपीलिकाओं में एक बड़े विवर में एक सौ रानी पिपीलिकाएँ तक होती हैं। मैदानी काले चींटे में चार या पाँच रानी पिपीलिकाएँ होती हैं। कुछ पिपीलिकाओं की जातियों में एक ही रानी की व्यवस्था होती है। किसी नए स्थापित उपनिवेश या उजड़ने की स्थिति के विवर में अन्य जातियों के विवर में एक ही रानी हो सकती है किन्तु नवस्थापित उपनिवेश में शीघ्र ही नई रानियाँ सुहाग-उड़ान के पश्चात् ग्रहण कर ली जाती हैं या विवर में ही क्वारी रानियाँ नर के संयोग द्वारा शिशु-उत्पादक रानी बना ली जाती हैं।

आद्य पिपीलिका अनुवंश (पोनेराइनी) की चीटियाँ धरती के अन्दर विवरों में ही रहती हैं। वे अपने बिल के ऊपर बाँबी नहीं बनातीं। सीधे मिट्टी में ही बिल खुदा होता है। उसमें प्रायः दो या तीन छेद होते हैं। इसकी सब जातियों की यह विशेषता है कि योद्धा या सैन्य अनुवंश (मिरमिसाइनी) पिपीलिकाओं में पाई जाने वाली योद्धा श्रेणी की भाँति कोई पृथक श्रेणी उनमें नहीं होती। वस्तुतः सभी आद्य पिपीलिका (पोनेराइनी) जातियों में श्रमिक, नर तथा रानियाँ एक रूप की होती हैं। किन्तु एक रूप होने का प्रश्न तो उन्हीं में उठता है जिनमें तीन श्रेणियाँ हैं। भारतीय तथा आस्ट्रेलिया की बड़ी आद्य पिपीलिका की डायकम्मा प्रजाति

में रानी होती ही नहीं। अंडा देने का कार्य एक या अधिक श्रमिक पिपीलिका ही करती है। यथार्थ में सभी श्रमिक पिपीलिकाएँ अवनत मादाएँ ही होती हैं। वे अंडा दे सकने में समर्थ हो सकती हैं। केवल यह विशेषता अवश्य है कि किसी भी अन्य अनुवंश में उनके दिए अंडे नर द्वारा सेचित (शुक्र कण से संयुक्त) नहीं किए जा सकते किन्तु डायकम्मा में यह बाधा नहीं खड़ी होती।

जिन अनुवंशों में श्रमिक पिपीलिका द्वारा अंडे दिए जाने के उदाहरण मिलते हैं उनमें नर द्वारा उन अंडों का सेचन न हो सकने से केवल नर की उत्पत्ति ही उन अंडों से होती है। केवल रानी द्वारा दिए अंडे ही सेचित हो सकते हैं। रानी भी जब नर उत्पन्न करने की इच्छा रखती है तो अपने दिए अंडे को सेचित न होने देकर नर उत्पन्न करती है। यह लिंग के स्वेच्छा-निर्णय का अवसर जीव-जन्तु जगत में कहीं अन्यत्र नहीं पाया जाता। पता नहीं, पिपीलिका किस अद्भुत शक्ति से ऐसा कर सकने में समर्थ होती है।

डायकम्मा पिपीलिका के उपनिवेश में दो या तीन सौ सदस्य होते हैं जो स्वतंत्र रूप में चारा संचय करने निकलते हैं। ये काले भद्दे रङ्ग के भारी आयुधों युक्त चींटे दो-तिहाई इञ्च लम्बे होते हैं। इनका आहार किसी भी प्रकार के कीट का मांस होता है। आस्ट्रेलिया की ऐंब्लियोपोनी और भी आदिम होती है। डायकम्मा की तरह उसमें भी रानी नहीं होती। नर को भी श्रमिक की तरह कार्य करना पड़ता है। उन्हें स्वयं जाकर अपना आहार प्राप्त करना पड़ता है। वे कुछ आहार विवर में भी लाते हैं जिसका कुछ अंश इल्लियाँ हड़प लेती हैं और अपनी उदरपूर्ति करती हैं।

आद्य पिपीलिका उपवंश (पोमेराइनी) की इन पिपीलिकाओं में सामाजिकता की मात्रा बहुत ही न्यून होती है। पिपीलिका की

सामाजिकता का सबसे प्रमुख गुण संघीय उदर से खाद्य-रस निष्कासित कर दूसरे को उसका पान कराना है। परन्तु यह संघोदर रसपान-क्रिया भी इन एकाकी आद्य पिपीलिकाओं की ऐम्ब्लियोपोनी तथा डायकम्मा जातियों में नहीं पाई जाती। अन्य अधिकांश आद्य-पिपीलिकाओं में एक दूसरे को खाद्य-रस पान कराने की क्रिया नहीं पाई जाती। एक पिपीलिका द्वारा दूसरी किसी पिपीलिका को अपने संघीय या सामाजिक उदर खंड से खाद्य रस निर्गत कर दूसरे को पान कराने की क्रिया एक प्रगाढ़ स्नेह-सूत्र का बंधन है। अपनी संवेदनशील मूछों से सजातीयता की गंध का प्रारंभ में अनुभव कर उन पिपीलिओं को दूसरे को खाद्यरस पान कराने के लिए तुरन्त उद्यत पाया जाता है जो समाजप्रिय जातियों की होती हैं। बाहर से आहार संग्रह कर आती हुई पिपीलिका विवर से निकली किसी पिपीलिका की याचना होते ही ऐसे खाद्यरस का पान कराने को उद्यत होती है। दोनों ही इसके लिए पैरों पर उठ खड़ी हो जाती हैं और दाता पिपीलिका खाद्यरस की एक चमकीली बूँद संघीय उदर से बाहर कर अपने मुख में लाती है। उधर दूसरी पिपीलिका उसे तुरन्त ही ग्रहण कर लेती है।

संघीय उदर से खाद्यामृत या खाद्य मधुपान कराने की इतनी शीघ्र पुनरावृत्ति होती पाई जाती है कि आश्चर्य होता है। पीली मैदानी पिपीलिका में इसके प्रयोग कर विचित्र फल देखे गए हैं। परीक्षण में मधु को लाल या नीले रंग में रंग कर रक्खा गया। यदि एक दर्जन पिपीलिकाओं को ही यह रंगीन मधुपान कराया जाय तो चौबीस घंटे में ही उनके सारे ही उपनिवेश की पिपीलिकाओं के पतले पारदर्शी उदर में रंगीन मधु पहुँचा पाया जा सकता है।

आद्य पिपीलिकाएँ ऐसी कोई पारस्परिक रसपान क्रिया नहीं

कर दिखातीं। उनके समाज में केवल एकाकी आखेटक पिपीलिकाओं का केवल इस कारण साथ होता है कि संयोगवश इल्ली अवस्था के बाद खोल के अन्दर पोषित प्यूपा रूप से उनका एक साथ ही उदय हुआ। इसके अतिरिक्त कोई भी अन्य सामाजिक बंधन उनमें नहीं पाया जाता। उनके शिशु उनके साथ ही बर्द्धित तथा पोषित होते हैं, प्रौढ़ होने पर उनके साथ ही रहते हैं। पुराने बिल में ही कोई नया छेद या द्वार खोदने में भी योग देते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त सामाजिकता की कोई अन्य बात उनमें नहीं देखी जा सकती।

आद्य पिपीलिका या पोनेराइनी को कंदरा पिपीलिका भी कहते हैं। वे बड़ी तथा दृढ़, मोटी त्वचा से आवेष्ठित होती है जिसका भेदन अन्य कीट कठिनाई से ही कर सकते हैं। अपने भारी आयुधों के कारण वह मंद गति से ही चल सकती है। सबसे बड़ी पिपीलिका आमेजन की डिनोपोनेरा ग्रैंडिस नाम की आद्य पिपीलिका है। उसकी लम्बाई लगभग दो इंच होती है। यह अपने पग ऐसे भारी प्रयास से उठाती है मानों कोई भारी कल घरघराती चल रही हो।

आस्ट्रेलिया की बुलडाग पिपीलिका (मिरमीसिया) भी इसी अनुवंश (आद्य पिपीलिका) की है। ये एक इन्च से लम्बी होती हैं। उनका जबड़ा आरे की भाँति रहता है। इन्हें आद्य पिपीलिकाओं में सबसे अधिक संख्या में पाया जाता है। ५०० से २००० तक पिपीलिकाएँ एक बिल में रहती पाई जाती हैं। इसकी कुछ जातियाँ कूदने में कुशल होती हैं। दौड़ते हुए ७ या ८ इन्च तक कूद जाती हैं। अधिकांश बुलडाग (मिरमीसिया) पिपीलिकाएँ जल में भी सहज उतर सकती हैं। वे कुछ दूर तक तैर सकने में समर्थ होती

हैं। इन वृत्तियों के कारण ये प्रायः समुद्र-तटवर्ती भागों में ही पाई जाती हैं।

आद्य पिपीलिका में मिरमीसिया या बुलडाग पिपीलिकाएँ अधिकांश आद्य पिपीलिकाओं की अपेक्षा अधिक समाजप्रिय होती हैं। उनमें रानी भी होती है किन्तु उसकी उतनी प्रतिष्ठित स्थिति नहीं। उसे अपने आहार की खोज में स्वयं बाहर जाना पड़ता है। परन्तु अंडा देने की क्रिया मन्द गति की ही होने के कारण आहार की खोज में उसके बाहर जाने से कोई विशेष हानि नहीं होती।

चींटी-चींटों का परिचय

चींटी-चींटे के छोटे आकार के समान ही हम अपना रूप बना समझ कर संसार को उसी प्रकार देखने का प्रयत्न करें जैसे हनूमान ने मशक रूप धारण कर लङ्कापुरी का दर्शन किया था तो हमें उस रूप में सभी वस्तुएँ नहीं ज्ञात हो सकतीं जैसी हमारे बड़े मानव-शरीर के चक्षु द्वारा ज्ञात हो सकती हैं। भूमि पर उगी हुई घास को हम पैरों तले रौंदते हैं। घास का मैदान हमें चौरस स्थान दिखाई पड़ता है परन्तु क्या छोटी पिपीलिका की दृष्टि में भी वही मैदान चौरस दिखाई पड़ सकता है ? उसके सामने तो साधारण घास का मैदान ही कोई घना जंगल सा दिखाई पड़ सकता है। घास के छोटे डंठल ही उसे बड़ी शहतीर मालूम हो सकते हैं। नन्हीं पत्तियों को ही वह कोई ऊँचा मञ्च समझ सकती है ·जिसकी छोर पर चढ़ जाने पर उसे चारों ओर हरी-हरी पत्तियों रूप के ही मञ्च आकाश में फैले दिखाई पड़ सकते। 'रही आकाश की बात, उसे तो पिपीलिका के चक्षु कदाचित अपनी ग्रहण शक्ति से वाहर ही समझ सकते हैं। इतने बड़े दृश्य की झाँकी ले सकने के लिए कदाचित् उनकी पुतलियाँ निरुपयोगी ही हों।

इतने छोटे आकार के जन्तु के लिए मानव का पूर्ण शरीर तो एक भारी दैत्य का रूप ही ज्ञात हो सकता है। अतएव हम अपने विशाल आकार का ध्यान छोड़कर पिपीलिका के क्षुद्र रूप को ही विशेष रूप से ध्यान में रख कर उसके जीवन पर विचार करें तो हमें उसका महत्व ठीक तरह समझ में आ सकता है।

धरातल पर नन्हीं-सी पिपीलिका को निरुद्देश्य इधर-उधर नाचते क्षुद्रकण समान ही देख कर हमारे ध्यान में यह बात आ सकती है कि उसमें बुद्धि कहाँ से हो सकती है। बुद्धि की मांप हम अपेक्षाकृत बड़े आकार के जन्तु से ही करते हैं किन्तु प्रकृति का विधान दूसरा ही है। क्षुद्रता या महत्वहीन दिखाई पड़नेवाली वस्तु में भी उसका कौशल देखा जा सकता है। यदि सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा हम पिपीलिका के शरीर का अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उसकी रचना भी बड़े विचार से की गई है। प्रकृति केवल इसी कारण किसी कार्य में असावधानी नहीं कर सकती कि उसके कार्य को कोई देखने वाला नहीं है या कोई वस्तु अपेक्षाकृत छोटी है।

पिपीलिका के ही आकार को वृहद मान कर देखा जाय तो उसकी रचना मानव शरीर के नमूने पर पाई जायगी। उसके शरीर को तीन भागों में विभक्त पाया जाता है, 'सिर, वक्ष तथा उदर। उसकी गर्दन तथा कमर तुलनात्मक दृष्टि से हमारी अपेक्षा बहुत पतली होती है। उनके छः पैर होते हैं जो हमारे शरीर की भाँति अन्तिम भाग रूप में न होकर मध्य भाग से निकले होते हैं, नर और मादा में पङ्ख भी होते हैं जिनकी विचित्र कहानी है।

पिपीलिकाओं का केवल षटपदी ही रूप नहीं होता, शरीर के ऊपरी आवरण पर ही उनकी अस्थि होती है। अस्थि नाम से चौंकना नहीं चाहिए। उनके पास जो कुछ भी शरीर है उसी का अपेक्षाकृत कठोर रूप अस्थि नाम से पुकारा जा सकता है। इस प्रकार हम अस्थि या कठोर अंश को शरीर के अन्तर्भाग के स्थान पर बाह्य रूप में ही आवेष्ठित पाते हैं। केकड़े की कड़ी खोल के ही समान ही उनके शरीर की बाहरी खोल कड़ी होने से अस्थि

कहला सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि पिपीलिकाओं का अस्थि कङ्काल शरीर के बाहरी भाग में ही होता है।

पिपीलिकाओं के शरीर में अस्थि नाम से जिस कड़ी खोल की रचना हुई होती है, उसका निर्माण हमारी अस्थियों के पदार्थ से न होकर एक ऐसे पदार्थ से होता है जो दृढ़ तथा लचकदार होता है। उसे सूखे गोंद-सा पदार्थ कह सकते हैं। इसी कारण यदि पिपीलिका कहीं ऊँचाई से गिर पड़े तो उसके शरीर में चोट का कहीं नाम ही नहीं होता कितनी भी ऊँचाई से गिरने पर उसका अंग-भंग नहीं हो पाता। एक विचित्र जात की ही कहानी इसे कह सकते हैं। हम उनकी कड़ी खोल को तो चिकनी तथा सपाट ही पाते हैं, परन्तु उसी का सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा निरीक्षण किया जाय तो हमें उसमें रोम उगे हुए दिखाई पड़ सकते हैं, कुछ को तो विशेष रोममय पाया जा सकता है।

पिपीलिकाओं का जीवन मिट्टी में रहने का ठहरा। अतएव सदा ही उसे मलिन बनने का अवसर रहता है। धूल और पङ्क शरीर के अंगों से चिपक जाते हैं। इस मलिनता से अधिक किसी भी अन्य वस्तु से पिपीलिका को घृणा नहीं होती। अतएव वह इसे दूर करने का प्रयत्न करती रहती है।

पिपीलिकाओं में स्वच्छता की इतनी विशेष वृत्ति होती है कि इस कार्य के लिए उसे किसी के द्वारा आज्ञा पाने या स्मृति दिलाने की आयश्यकता नहीं होती। कान उमेठ कर कभी उसे स्वच्छ रहने का आदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह तो स्वयं ही अपनी अंत:प्रेरणा से स्वच्छ रहने का सतत प्रयत्न करती रहती है। इसके लिए उसके पैरों में कंघे या बाल के ब्रश की व्यवस्था भी प्रकृति द्वारा प्राप्त रहती है। प्रत्येक अवकाश के समय का उपयोग वह अपने प्रकृतिदत्त कंघों या ब्रशों द्वारा शरीर की बाहरी खाल या

अस्थि स्वच्छ करने में व्यतीत करती है। बाह्य कठोर त्वचा को चिकनाने का भी उद्योग करती रहती है।

जब पिपीलिका श्रम का कार्य कर चुकी रहती है और भोजन के लिए तैयार-सी होने जाती है तो पहले एक और बाद में दूसरा पैर अपने मुख में डालती है। मुख के अन्दर जीभ से स्पञ्ज-सा रगड़ने का कार्य होता है। जीभ की रगड़ से धूल कीचड़ आदि के कण गिर जाते हैं। पूर्ण स्वच्छ हो जाने पर वह अपनी जीभ से ही चिकनाने का कार्य करती है। उसका थूक तैलमय होता है। इस कारण थूक की तैलमय चिकनाहट से उसके शरीर की कठोर त्वचा पर पालिश सा हो जाता है। उसके शरीर की बाह्य त्वचा पर वस्तुतः इतना तैलमय पदार्थ सिंचित रहता है कि उसकी रगड़ से उनके विवर के कक्षों तथा दालानों की दीवालों पर उसकी तह-सी जम गई होती है। एक विचित्र बात यह है कि पिपीलिकाएँ केवल अपना ही शरीर नहीं चिकनातीं, बल्कि दूसरे साथियों का शरीर भी बड़ी प्रसन्नता से चिकनाया करती हैं। वे इस सेवा कार्य के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं प्राप्त करतीं, बल्कि वह केवल निस्वार्थ सेवा ही होती है।

पिपीलिका के सब से विचित्र अङ्ग कदाचित् संवेदनीय मूछें हैं। इन्हें स्पर्शक सूत्र भी कह सकते हैं। इनकी रचना तथा कार्य समझने के लिए मान लीजिए कि आपकी उँगलियों के सिरे पर नासिका है जिससे आप गंध का अनुभव कर सकें। संवेदनीय मूँछ या स्पर्शक सूत्र मुख के आगे, ऊपर नीचे हिलते-डुलते या कम्पित होते रहते हैं। उनमें क्षुद्र रोमों का आवेष्ठन होता है। उन सब क्षुद्र रोमों के शीर्ष स्पर्श तथा गन्ध शक्ति ग्रहण कर सकते हैं।

यह एक आश्चर्य का ही व्यापार है कि अपनी सम्वेदक मूँछ

या स्पर्शक सूत्र के ऊपर उगे क्षुद्र रोमों के सिरों द्वारा पिपीलिका को गंध का ज्ञान हो जाता है। वह गंध विशेष से ही अपनी सजातीय पिपीलिका की पहचान कर सकती है। सभी सजातीय पिपीलिकाओं में एक सी गंध होती है, परन्तु रानी की गंध विभिन्न होती हैं। श्रमिकों की गंध दूसरी होती है। सैनिक पिपीलिकाओं की गंध दूसरी होती हैं। अतएव केवल संवेदनीय मूँछों द्वारा ही पिपीलिकाओं का ज्ञान हो सकता है कि दूसरी पिपीलिका उसकी जाति के किस वर्ण या धंधे की है। यह कितना आश्चर्य है कि केवल गंध की पहचान हो सके। गंध या स्पर्श शक्ति से ही यह ज्ञान हो पाता है, परन्तु हममें इतनी सूक्ष्म बोध शक्ति नहीं होती।

पिपीलिका जीवन का अध्ययन करने वाले खोजियों ने उसकी संवेदनीय मूछ या स्पर्शक सूत्र को काट फेंक कर उसके प्रभाव का अध्ययन किया है। संवेदनीय मूछ के अभाव में बेचारी पिपीलिका न तो सजातीय या सम व्यवसायी की पहचान कर सकती है, न मार्ग ढूँढ़ सकती है, न आहार ही ढूँढ़ सकती है, न शिशुपालन कर सकती है, न शत्रु मित्र की ही पहचान कर सकती है। केवल इन संवेदनीय मूछों द्वारा ही उसे इन बातों की अनुभूति हो पाती है।

परीक्षणों में पिपीलिकाओं को रासायनिक पदार्थों से धोकर उनकी मूल गंध को हटाकर नई गंधयुक्त किया गया है और पुनः अपने सजातियों के बीच छोड़ा गया है। परन्तु वहाँ से वे शत्रु की भाँति भगाई जा सकीं तथा आक्रान्त हुई हैं। उनका अपने जनकों द्वारा ही तिरस्कार हुआ है।

पिपीलिका के सिर पर दोनों पार्श्व भागों में दो बड़े-बड़े नेत्र होते हैं जिनमें सैंकड़ों खिडकियों के ताल से होते हैं। इन्हें सूक्ष्म दर्शक यंत्रों द्वारा ही देखा जा सकता है। माथे के ऊपर तीन छोटे-

के अंदर की सभी पिपीलिकाएँ कदाचित शोर मचाकर विपत्ति का संवाद प्रसारित कर रही थीं। उसके परिणाम स्वरूप उस दूसरे विवर की पिपीलिकाएँ बाहर निकल कर स्थिति का पता लगाने लगीं उन्हें बोतल के अंदर बंद पिपीलिकाओं का आर्त्तनाद कदाचित सुनाई पड़ गया था। यह घटना प्रकट करती है कि पिपीलिकाएँ किसी प्रकार की सार्थक या संकेत ध्वनि उत्पन्न कर सकती हैं तथा उसे श्रवण कर कुछ भाव भी समझ सकने में समर्थ हो सकती हैं किन्तु यह एक निश्चयात्मक बात नहीं कही जा सकती।

सार्थक ध्वनि या संकेत ध्वनि उत्पन्न करने की बात छोड़ भी दी जाय तो साधारण शब्द उत्पन्न करने में तो कुछ सन्देह ही नहीं। ब्राज़ील में एक पिपीलिका होती है जो झन-झनिया साँप की भाँति झन-झन शब्द उत्पन्न करती है। एक दूसरी पिपीलिका अपनी पीठ के अंतिम भाग से बिल की दीवाल ठोक-ठोक कर ढोल समान शब्द उत्पन्न करती है। टेक्सा की पत्रकर्तनक पिपीलिका की रानी इतना तीव्र स्वर उत्पन्न करती है कि मनुष्य अपने कानों से सुन सकता है। उसकी बड़ी सैनिक पिपीलिकाएँ कुछ हल्के शब्द उत्पन्न करती है। श्रमिक पिपीलिकाएँ सैनिकों से भी अपेक्षाकृत मन्द शब्द उत्पन्न करती हैं। श्रमिकों में भी मध्य आकार की पिपीलिका दीर्घाकार श्रमिक पिपीलिका से अपेक्षाकृत मन्द ध्वनि उत्पन्न करती है। इसी प्रकार क्रमशः निम्नतम कोटि की पिपीलिकाएँ मन्दतम शब्द उत्पन्न करती हैं जिसे सुन सकने में हमारे कान असमर्थ ही होते हैं। इस बात से भी प्रकट होता है कि पिपीलिकाएँ परस्पर एक दूसरे का शब्द सुन सकती हैं परन्तु क्षुद्र-जगत की ध्वनि होने से वे हमारी ग्रहण-शक्ति से परे ही होते हैं।

एक घड़ी का विवाह

पिपीलिका-जगत में एक दिन बड़ी ही धूम-धाम का होता है। उस दिन के आगमन की तैयारी विवर के सभी सदस्य करते हैं। यह प्रौढ़ या सन्तानोत्पादन योग्य नर और मादाओं के आकाश में स्वयंवर रचाने का दिन होता है। पता नहीं किस प्रकार अनेक उपनिवेशों के विवरों में सजातीय पिपीलिकाएँ संवाद प्रेषित कर यह दिन विवाह के लिए निर्धारित करती हैं। सगोत्रीय का विवाह नहीं होता। पिपीलिकाओं में ही एक ही विवर के नर मादाओं में विवाह न होने देने का विधान सा है। सन्तानोत्पादन योग्य मादा को रानी पिपीलिका नाम दिया जाता है। किसी दिन ऋतु अनुकूल होने तथा वर्षा न होने पर एक क्षेत्र की सभी सजातीय पिपीलिकाओं की प्रौढ़ कुमारी रानियाँ तथा नर पंख फैला कर आकाश में उड़ चलते हैं। आकाश में पहुँच कर रानियाँ दूसरे विवर या उपनिवेश के नर द्वारा गर्भाधान क्रिया में लिप्त होती हैं। यह एक घड़ी का ही स्वयंवर होता है।

रानी तथा नरों को प्रकृति पंख प्रदान किए होती है जिस का उपयोग कर केवल एक बार एक घड़ी के इस विवाह या स्वयंवर के लिए ही उड़ने का अवसर आता है। रानी के आजीवन पुनः उड़ने का अवसर नहीं आता। नर का तो किसी न किसी प्रकार एक दो दिन में ही जीवन समाप्त हो जाता है। वह पंखहीन नहीं, प्राणहीन हो सकता है। उसे अपने ही विवर में लौटने

की इच्छा हो तो भी उसे वहाँ उसकी जननी तथा सजातीयों, सहवंशियों द्वारा कभी भी प्रश्रय नहीं मिलता। वे मार भगाए जाते हैं या मार कर बाहर घूरे पर फेंक दिए जाते हैं। बाहर ही कहीं रहने पर उन्हें पक्षी या अन्य कीट भक्षण कर समाप्त कर देते हैं अथवा निराहार ही मरने के लिए विवश होना पड़ता है। नर-पिपीलिका के जीवन का उद्देश्य केवल एक बार रानी पिपीलिका को गर्भान्वित कर देना ही होता हैं। अतएव वह अपने शेष निरर्थक जीवन के लिए कहीं स्थान ही नहीं पाता।

रानी पिपीलिका शुक्रकीट को हजारों लाखों की संख्या में नर से प्राप्त कर अपने शरीर की एक छोटी थैली में रक्षित कर लेती है। वह थैली उसकी गर्दन के चारों ओर एक दृढ़ पेशी द्वारा आबद्ध होती हैं। जब अंडे देकर वह शुक्रकीट की इस थैली का क्षुद्र रंध्र शिथिल करती है तो एक शुक्रकीट बाहर आकर अंडे से संयुक्त हो जाता है। वह सेचित अंडा मादा पिपीलिका उत्पन्न करता है। रानी की इच्छा नर उत्पन्न करने को होती है तो शुक्रकीट के थैले का रंध्र बंद ही रखती है और अपने दिए अंडे को असेचित ही बाहर करती है। उस से नर उत्पन्न होते हैं। सेचित अंडों से ही रानी तथा बाँझ मादाओं रूप श्रमिक पिपीलिकाओं का जन्म होता है। शोधकर्ताओं का मत है कि खाद्य-द्रव्य की प्रचुरता या न्यूनता से ही सेचित अंडे से रानी या बाँझ श्रमिक की उत्पत्ति होती है।

सुहाग उड़ान या एक घड़ी के स्वयंवर के पश्चात् नर के शेष जीवन की कथा तो बहुत ही संक्षिप्त तथा विषादपूर्ण होती है, परन्तु गर्भान्वित रानी के शेष जीवन की कथा विशेष क्रियाशील तथा साहसपूर्ण होती है। यथार्थ में पिपीलिका-जगत का प्रसार तथा संचालन उसी के माध्यम से हो पाता है। अतएव रानी की

जीवन-कथा बड़ी ही मनोरंजक पाई जा सकती है। सच पूछा जाय तो रानी की जीवन-कथा को पिपीलिका जगत की कथा कहा जा सकता है। उसकी बहुसंख्यक सन्तानें अवश्य बहुमुखी प्रतिभा दिखा कर कौशलपूर्ण कार्य करती हैं। परन्तु उनका प्रारंभ में पालन-पोषण तथा नियमन वही करती है।

जिस दिन पिपीलिकाओं की सुहाग-उड़ान का अवसर होता है सारा आकाश उस क्षेत्र में इन उड़ते कीटों से ही आच्छादित होता है। ये स्वयंवर-प्रवृत्त पिपीलिकाओं के नर मादा ही होते हैं जो बड़े आकार तथा पंख-धारण करने के कारण पहचाने से नहीं जाते। उनका किसी पृथक जाति का होने का ही भ्रम होता है। सदा विवर के अंधकार में जीवन-यापन करने वाली पिपीलिका श्रेणी के ही ये खुले जगत में आकाशगामी रूप होते हैं। एक दिन की लीला के पश्चात् ही इन्हें फिर दृष्टि से ओझल पाया जाता है। अतएव साधारण द्रष्टा को यह कैसे ज्ञात हो सके कि वे ही मैदानी तथा बाग-बगीचों या घरों के अंदर पाए जाने वाले चींटी-चींटों के ही यथार्थ जनक होते हैं।

पन्द्रह-बीस हजार पिपीलिका जातियों की सुहाग-उड़ानों में विभिन्नता होती है। कुछ जातियों में पंखहीन नर होता है या पंख-हीन मादा होती है। उन में या तो नर कुमारी रानियों (संतानोत्पादक मादा) की पीठ पर बैठ जाते हैं या कुमारी रानियाँ भूमि पर ही गर्भान्वित हो कर नया उपनिवेश स्थापित करने कहीं अन्यत्र उड़ जाती हैं। कभी-कभी नर ही किसी अन्य सजातीय पिपीलिका के विवर में उड़कर पहुँचते हैं और वहाँ कुमारी रानियों को गर्भान्वित करते हैं।

अधिकांश पिपीलिका जातियों में सन्तानोत्पादन का मूल-सिद्धान्त एक ही है। सुहाग-उड़ान का अवसर जब आने वाला

होता है तो उनका संकेत कुछ पूर्व ज्ञात हो सकता है। प्रथम चिन्ह श्रमिकों में अधिकाधिक उत्तेजना तथा भागदौड़ है। वे बहु-संख्यक रूप में इधर-उधर विवर के मुख के निकट दौड़ लगाने लगते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर उनकी दैनिक गति-विधि से उन दिनों की गति-विधि में कई दिनों पूर्व ही अंतर का अनुभव किया जा सकता है किन्तु ठीक सुहाग-उड़ान के दिन तो अनुभव-हीन निरीक्षक भी उनके व्यवहार में अंतर अनुभव कर सकता है। उनकी उत्तेजना छिप नहीं सकती। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रमिक विवर के निकट प्रत्येक इंच भूमि पर पहरा दे रहे हैं और अपने उपनिवेश के दूल्हे-दुलहिनों को स्वयंवर के लिए उड़ाने का आमुख बाँध रहे हैं। श्रमिकों के झुंड के झुंड कभी बिल से बाहर निकलते और बार-बार भीतर जाते रहते हैं। वस्तुतः उनका व्यवहार कोई उद्देश्यपूर्ण नहीं होता, केवल उत्तेजना का ही यह परिणाम होता है। केवल कुमारी रानियाँ तथा कुमार नरों के प्रति आकर्षण ही उन्हें बिल में फिर खींच ले जाता है।

रानी तथा नर का आकार साधारण पिपीलिकाओं (श्रमिक तथा सैनिक आदि) से विशेष बड़ा होने के कारण बिल का द्वार उनके निकलने योग्य नहीं होता। उसे श्रमिक बड़ा बनाते हैं। श्रेष्ठ पिपीलिका अनुवंश (फोर्मिसाइनी) दीर्घतम पिपीलिकाओं की जाति होती है। उन में रानी का आकार श्रमिक से कई गुना बड़ा होता है। भीम पिपीलिका अनुवंश (मिरमिसाइनी) की केरेबारा जाति में रानी का आकार उसकी क्षुद्रतम श्रमिक सन्तान से ७००० गुना अधिक आयतन का होता है। किन्तु यह एक विशेष अपवाद ही है। यह आकार की दीर्घता की चरम सीमा है। साधारणतया रानी का आकार श्रमिक का डेढ़ गुना या दुगुना होता है तथा वक्ष और उदर स्थल पर अनुपात से बहुत अधिक स्थूल होता है। इन

व के लिए विवर का छिद्र भीतर से धीरे-धीरे बड़ा किया जाता
ड़ता है। सुहाग-यात्रा के दिन ही सिरे का भाग अंत में बड़ा कर
गया जाता है। विवाह के पूर्व रानी के शरीर में पंख भी होता है
ासे उस अवसर के लिए रक्षित करना आवश्यक होता है। इसलिए
िवर का द्वार बड़ा करना आवश्यक होता है। ठीक समय पर कोई
ड़ी पिपीलिका बिल के द्वार से मुँह निकाल कर उड़ने का
ायोजन करती दिखाई पड़ती है। वही रानी होती है।

नर का आकार रानी पिपीलिका से प्रायः छोटा ही होता है।
श्रमिकों से कुछ बड़े, छोटे या समान आकार के ही हो सकते हैं।
ाद्य पिपीलिका अनुवंश (पोनेराइनी) में नर, मादा तथा श्रमिक
ोनों ही श्रेणियों का आकार बराबर ही होता है। भाम-पिपीलिका
मिरमिसाइनी) की कुछ जातियों तथा आद्य पिपीलिका की ही
मजोली मध्य पिपीलिका अनुवंश (सेरापेचाइनी) और भीम-
पिपीलिका की हमजोली दिव्य पिपीलिका (स्यूडोमिरमाइनी) की
ायः सभी जातियों में भी ऐसी ही व्यवस्था होती है। सैन्य या
ोद्धा पिपीलिका अनुवंश (डोरिलाइलनी) में विशेषता देखी जाती
कि नर का रूप बर्रे के समान पौन या एक इंच लंबा होता है।
श्रमिकों तथा सैनिकों से बहुत बड़े तथा रूप में विभिन्न होते हैं।
किन्तु पंखहीन रानी से उनका रूप अधिक भिन्न नहीं होता।

रानी तथा नरों के विवर से बाहर निकलने के लिए विवर का
ुख कई दिनों पूर्व से ही बड़ा किया जाने लगता है या अंतिम
दिन ही हो सकता है, परन्तु भीतर की ओर के छेद को भी बड़ा
करना आवश्यक होता है जिसमें से होकर नर तथा रानियाँ बाहर
निकल सकें। इस कारण कई दिनों तक विवर के भीतरी छिद्र या
दालान की खुदाई से बाहर मिट्टी की ढेर लग जाती है।

सब कुछ तैयारी हो जाने पर रानियाँ तथा नर बाहर आने

लगते हैं। विवर से निकलने के समय दो-चार श्रमिक भी अपने शरीर से लटकाए चलते हैं। नर तथा रानी को पंखों के दृढ़ता परखने के समय ये श्रमिक उनके शरीर को भूमि पर खींचे से रहते हैं। इस प्रकार बहु-संख्यक नरों तथा रानियों का विवर के बाहर आगमन होता है। चारों ओर श्रमिकों की भारी भीड़ एकत्र रहती है। कोई भारी महोत्सव होने वाला होता है। जिन जातियों की पिपीलिकाएँ खुले प्रकाश से दूर भागने वाली होती हैं और कभी बाहर नहीं आतीं, उनको भी इस महोत्सव का दर्शन प्राप्त करने के लिए ऊपर पहुँचा देखा जाता है। धीरे-धीरे श्रमिक सहायता कर नरों तथा रानियों को किसी ऊँचे स्थान पर पहुँचाते हैं जहाँ से वे उड़ान प्रारंभ कर सकें। बहुत से श्रमिक भी उड़ने की प्रवृत्ति जागृत सी कर चारों ओर पौधों के तनों तथा पत्तों के छोर पर चढ़ गए होते हैं। ऐसा ही बड़ा समारोह कदाचित आर्द्रता तथा तापमान की किसी विशेष परख द्वारा अन्य सजातीय पिपीलिकाओं के विवरों के निकट भी उसी दिन अवश्य घटित होता है अन्यथा स्वयंवर का कृत्य ही पूरा न हो सके। इन दृश्यों के मध्य अनुभवहीन नर तथा कुमारी रानियाँ प्रथम तथा अंतिम उड़ान के लिए पंख सँभालती हैं। पहले कुछ लड़खड़ा कर ही उड़ना प्रारंभ कर जीवनोद्देश्य तथा संतानवृद्धि का कार्य पूर्ण करती हैं।

पिपीलिकाओं में सुहाग-उड़ान का उद्देश्य कलम लगाने के समान दो विभिन्न उपनिवेशों के नर और रानियों का गर्भाधान क्रिया में लिप्त कराना होता है, जिससे संतान उत्तम हो। एक ही बिल या उपनिवेश के नर और कुमारी रानी का संयोग न होने देने के लिए विशेष व्यवस्था होती है। वे श्रमिकों द्वारा बिल्कुल पृथक्-पृथक् ही रक्खे जाते हैं। कहीं अपवाद स्वरूप एक ही विवर के नर और कुमारी रानी का संयोग श्रमिकों द्वारा खींचातानी द्वारा

विरोध करते रहने पर भी हो जाता है, परन्तु ऐसी घटना बहुत ही कम होती है। ऐसा होने पर भी रानी अवश्य उड़ कर अन्यत्र चली जाती है। नर का संहार श्रमिकों द्वारा वहीं हो सकता है।

सुहाग-उड़ान बड़ी ऊँचाई पर होती है। भँवर की तरह आकाश में चक्कर लगाते नर तथा मादाओं का संयोग होता है। संयुक्त

पिपीलिकाओं के पिता को किसी पक्षी ने खा लिया होगा।

भार से वे नीचे गिरते से हैं। किन्तु फिर ऊपर उड़ जाते हैं और अनेक बार गर्भान्वित होने के पश्चात् अन्त में रानी भूमि पर

आ गिरती है और कहीं लुक-छिप कर आश्रय लेती है। नर तो कितने ही धराशायी होकर प्राण गँवाने का मार्ग पहले ग्रहण कर चुके होते हैं। शेष का भी अन्त होता है। उन्हें कहीं कोई पक्षी ही उदरस्थ बना सकता है। उनकी सन्तानों को कभी अपने जीवित पिता का दर्शन करने का अवसर ही नहीं हो सकता।

गर्भाधान क्रिया पूर्ण कर भूमि पर अन्तिम रूप से गिर चुकने के पश्चात् कहीं छिपने का आश्रय पाते ही रानी गर्भाधान संस्कार की शेष क्रिया पूर्ण-सी करती है। वह एक क्षण बिल्कुल शान्त खड़े होकर अपने पंखों को एक भारी झटका पहुँचाती है जिससे वे शरीर से टूट कर गिर पड़ते हैं। उसकी उड़ान की अवधि समाप्त हो चुकी होती है। उसे अब जीवन के अधिक उपयोगी व्यापार में लिप्त होना होता है जो उड़ान से बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण होता है। उसे आजीवन अण्डे देकर सन्तान-वृद्धि करनी होती है। उसके लिए नया उपनिवेश स्थापित करना होता है। प्रायः उसका कोई उस समय सहायक नहीं होता। अण्डा देकर शिशु उत्पन्न करने के लिए उसे छिपी अवस्था में रहने के लिए विवर खोदना होता है। सन्तान उत्पन्न होने तक उसे विवर में ही निराहार पड़े रहना आवश्यक होता है। उस स्थिति में शरीर के अन्दर रक्षित द्रव्य ही उसकी जीवन-रक्षा कर सकते हैं। पंखों को फटफटा सकने वाली दृढ़ पेशियों का तत्व उसके पोषण में व्यय होकर उसकी रक्षा कर सकता है। कदाचित इसी कारण उसे भावी की चिन्ता में अपनी उड़ान की आकांक्षा सारे जीवन के लिए मिटा देनी पड़ती है। इस कारण पंख त्याज्य करती है।

नई बस्ती की स्थापना

मनुष्यों में संख्यावृद्धि होने पर स्वदेश में जीविका का यथेष्ट साधन सुलभ न होने से अन्यत्र जाकर उपनिवेश स्थापित होने के उदाहरण मिलते हैं। पिपीलिकाओं में भी नई बस्तियाँ या उपनिवेश स्थापित होते हैं किन्तु उसका कारण वंश का प्रसार तथा रक्षा होता है। वृक्ष-वनस्पतियों की भाँति एक स्थान पर स्थित बस्ती कुछ वर्षों में मिट जाया करती है। अतएव नए स्थानों या पुराने विवर के ही नए उपविभाग रूप में विवरों की स्थापना की आवश्यकता होती है। इस कार्य का भार गर्भान्वित पिपीलिका रानी पर होता है।

जब नर के संयोग के पश्चात् अंततः भूमि पर आकर रानी पिपीलिका स्थिर हो जाती है तो अपनी वृत्ति के अनुसार कहीं वृक्ष की छाल के नीचे या पत्थरों, घास-पातों आदि के नीचे आश्रय ग्रहण कर लेती है। वहीं वह विवर बनाने लगती है। पंख का भी परित्याग कर चुकी होती है। उस स्थिति में वह संतान-वृद्धि की आकांक्षा से एक विकट रूप धारण किए होती है तथा किसी भी प्रकार के शत्रु से मुठभेड़ लेने के लिए सन्नद्ध ज्ञात होती है। उस समय उसके शरीर के अंतर्गत निहित शक्ति तथा अंगों का बल ही सहायक होता है। कभी-कभी कुछ श्रमिक भी उसके साथ आ गए होते हैं किन्तु प्रायः वह अकेले ही पाई जाती है।

अकेला होने पर भी रानी पिपीलिका को नए घर या बस्ती की

स्थापना के लिए सब कुछ करना पड़ता है। वह अब तक अपने पुराने विवर में लाड़ली सी बनी पाली जाती रही हैं। अन्य श्रमिक शिशुओं की अपेक्षा उसे प्रचुर आहार प्राप्त होता रहा है। आहार प्राप्ति के लिए उसे कभी विवर से बाहर नहीं जाना पड़ा होता। उसे तो जन्म से ही विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं किन्तु इतने लाड़-प्यार से पाली रानी भी अपने जीवन में एक दिन अकेली होती है। केवल बिल बनाने में ही उसे इतना अधिक एकाकी श्रम करना पड़ता है कि पैरों तथा शरीर के बाल झड़ जाते हैं, जबड़े के सिरे घिस कर अत्यन्त कुन्द बन जाते हैं। अतएव रानी का रूप ही परिवर्तित हो गया होता है। अब वह सुन्दर दुलहिन नहीं रह गई होती जिस आकार में वह सुहाग-उड़ान किए होती है।

आश्रय प्राप्त करने के प्रथम प्रयास में रानी को विवर खोदने में विश्राम के लिए पल भर का भी अवसर नहीं होता। वह बिल्कुल निराहार ही रहती है। छोटा बिल खोद लेने पर भी उसे बिल में प्रवेश कर आने वाले शत्रुओं का भाग्य रहता है। वस्तुतः हजारों रानियों में से अधिकांश का भाग्य मृत्यु की चपेट में ही पड़ना होता है। जीवन-संघर्ष में बच कर भी सन्तानोत्पादन कर कोई नई बस्ती बसा लेने वाली रानी पिपीलिका विरली ही होती है।

यदि ऐसा प्रकृति का विधान न होता तो जितनी अधिक संख्या में इनकी संख्या-वृद्धि होती है और प्रौढ़ रानी तथा नरों का उद्भव होता है उन सब के गर्भाधान क्रिया में लिप्त होकर सन्तानोत्पादन करने में सदा ही सफलता मिल जाया करती तो आज संसार में एकमात्र पिपीलिकाओं का ही राज्य होता। अन्य प्राणियों के लिए स्थान ही शेष नहीं रहता। फिर भी अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक रानी में सावधान रहने के लिए अंतःवृत्ति तो होती ही है, फलतः बिल खोद कर उसका मुख ऊपरी भाग में मिट्टी, कूड़े आदि से बंद कर देने

का प्रयत्न करती है। स्वेच्छा से ऐसे रूप में वन्दी होकर जीवित रह सकती है। वह इस क्षुद्र बंदी कक्ष में जल, वायु तथा आहार के बिना ही आठ-नौ मास तक की लम्बी अवधि भी बिता सकने में समर्थ होती है।

वन्द रूप में बिल के अन्दर पड़ी रानी पिपीलिका के लिए स्वेच्छा कारावास की यह अवधि भयानक ही होती है। कितनी ही रानियाँ इस काल में ही समाप्त हो जाती है। आँधी, पानी, जल-विप्लव, हिमपात तथा भीषण शत्रुओं के प्रहार से उनकी मृत्यु की घड़ी किसी भी समय किसी भी बहाने आ सकना तनिक भी विशेष विस्मय की बात नहीं हो सकती।

इस बात का उल्लेख किया गया है कि कदाचित रानी तथा बाँझ मादाओं (श्रमिकों) में केवल यही अन्तर हो सकता है कि उनके पोषण के समय अधिक या न्यून मात्रा में आहार प्राप्त हुआ रहता है। अंडे से उत्पन्न होने पर भी आकार तथा प्रकार में कुछ या अधिक भेद हो सकता है। परन्तु एक बात निर्विवाद है कि किसी भी कारण अपनी मातृभूमि या जननी-निवास में कुमारी रानियाँ यथेष्ठ पुष्ट आकार प्राप्त करती हैं। उन्हें अन्य सेविकाएँ यथेष्ट लालन-पालन तथा आहार देने का प्रयास करती हैं। उसका कारण भी होता है। कुमारी रानी को आगे चलकर नई बस्ती अपने ही बल पर स्थापित करने में पहले अपने शरीर में संचित वसा या खाद्य पदार्थ पर ही अवलंबित रहकर जीवन यापन करना पड़ता है।

अपनी गर्भान्वित स्थिति में रानी पिपीलिका को यह आभासित सा ज्ञात होता है कि बंद विवर में उसे निराहार ही समय बिताने में सफलता प्राप्त करनी है। इसी कारण वह अपने पंख उखाड़ फेंके होती है जिससे एक तो कभी जीवन में फिर नरों के

जाल में पड़कर केवल एक बार ही गर्भान्वित होने की जाति-परम्परा को उन्हें कलंकित करने का अवसर न प्राप्त हो। दूसरे पंख कंपित कर उड़ा सकने वाली पेशियाँ अब गलगल कर उसकी जीवन ही की रक्षा करें जिससे अंडे देकर संतान रूप की प्राथमिक सहायिकाएँ उत्पन्न करने में सफलता मिलती रहे। रानी को इन सब भूत तथा भविष्य की क्रमिक घटनाओं की लड़ी पिरोकर कोई जीवन-कथा आभासित करने की क्षमता हो या न हो परन्तु घटनाओं का क्रम इसी प्रकार अनायास ही चलता सा रहता है। प्रत्येक पीढ़ी में रानियाँ जीवन-कार्य चलाकर अपनी जाति-वृद्धि के लिए दुस्सह साधना सहन करती रहती पाई जाती हैं।

नीति में कहा गया है कि रक्षा के लिये मनुष्य को अन्त में कुछ भी करना पड़ सकता है। रानियाँ भी बंदी बनकर जब अंडे देकर उनसे सन्तान उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करने लगती हैं तो उद्देश्य-पूर्ति के पूर्व ही खाद्य-भंडार की शरीर के अन्तर्गत क्षीणता अनुभव कर कभी भूख से असह्य पीड़ित हो सकती हैं परन्तु इन सब स्थितियों में भी वे बहुसंख्यक अंडे नित्य देते जाने की क्रिया ही दुहराती रहती है। अतएव अन्य कोई पदार्थ कहीं बिल में सुलभ होना असम्भव होने से वे कुछ अंडे ही उदरस्थ कर इसलिए जीवन-रक्षा करती हैं कि पहले के शेष अंडों से शिशु उत्पन्न होने तक वे जीवित रह सकें। पिपीलिकाओं की क्षुद्र आकृति ही हमें उपेक्षणीय तथा तुच्छ दिखाई पड़ती है। फिर उनके अंडे तो स्वभावतया ही और भी छोटे आकार के नन्हें श्वेत विन्दुवत होते होंगे। परन्तु उनमें भी अपेक्षाकृत बड़े जंतुओं के अंडों की भाँति ऊपर से कड़ा छिल्का तथा भीतर श्वेत खाद्य वस्तु तथा पीत वर्ण के प्राण-कोष की स्थिति होती है। हम अपनी स्थूल दृष्टि से उन्हें नहीं ज्ञात कर सकते, परन्तु सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा यह स्पष्ट हो

सकता है कि उनमें कड़ी नन्हीं सी खोल के भीतर मुर्गी, बत्तखों आदि के अंडों की तरह सफेदी और पीलेपन रंग के पदार्थ होते हैं जिनसे प्राणवान शिशु जनित होते हैं।

हम द्विज का नाम सुनते हैं। संस्कार की दृष्टि से उपनयन का संस्कार एक नया जन्म या सांस्कृतिक जन्म माना जाने के कारण लोग कुछ वर्णों को द्विज नाम से पुकारते हैं। शब्द के ठीक अर्थ में एक बार मादा के पेट से अंडे रूप में और अंडे से फिर शिशु रूप में उत्पन्न होने के कारण पक्षियों को 'द्विज' नाम दिया जाता है। अन्य जन्तु भी ऐसे ढङ्ग से जन्म धारण करते हैं। परन्तु चींटी, चींटे तथा बहुतेरे अन्य कीटों को द्विज के स्थान पर 'त्रिज' या तिजन्मा कहना अत्युक्ति नहीं कही जा सकती बिल के छेद को कुछ बड़ाकर सन्तानों योग्य स्थान का अनुभव कर रानी पिपी-लिका अंडे देने लगती है। उसका संसार में अन्य कोई भी नहीं होता। इन भावी सन्तानों के पिता कहीं मुर्गी-मुर्गों द्वारा खा लिए गए होते या अन्य प्रकार से काल कवलित हुए रहते हैं। जन्म से भी पूर्व आधे अनाथ बनी इन संतानों के जनन करने के समय उनकी माता का उनके प्रति अनुराग प्रगाढ़ होना आवश्यक ही है। रानी उन अंडों की बड़ी ही सावधानी से सेवा करती है। उन्हें चाट चाटकर आर्द्र रखती है। तापमान के विभेद से वह उन्हें एक कोने से दूसरे कोने ले जाते रहने का उपक्रम करती है। जिस तरह बिल्ली अपने नवजात शिशुओं को चाट-चाटकर स्वच्छ करती रहती है या पशु भी जीभ से चाटकर नवोत्पन्न शिशु के प्रति स्नेह दिखाने के साथ ही शरीर के ऊपर का मल हटाते हैं, उसी प्रकार चींटे-चींटियों को भी शिशुओं को ही नहीं, प्रत्युत एक दूसरे को प्रौढ़ावस्था हो जाने पर भी चाटते पाया जाता है। उसमें कुछ स्नेह या स्वच्छता की भावना का समावेश होगा, परन्तु यह

समझ में नहीं आता कि पिपीलिकाएँ अपने अंडों को किस कारण चाटती हैं। इस गूढ़ता की व्याख्या करना कठिन ज्ञात होता है। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अंडे सूख न जाय इस चिंता से अपने थूक से उनकी खोल पर आर्द्रता पहुँचाना उद्देश्य रहता है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों की धारणा है कि कदाचित उनके थूक में लसीलापन होता है जिससे अंडे पर स्वर चिपक जाया करते हैं और इस कारण उन्हें गट्ठर रूप में बनाकर उठा धर सकना सुगम होता है।

अंडों के पिपीलिकाओं द्वारा चाटे जाने की एक तर्कसंगत व्याख्या उद्देश्यपूर्ण ज्ञात होती है। यह कल्पना की जाती है कि उनके थूक में रोगजनक कीटाणुओं या दहिया के मारने की शक्ति होती है। इस गुण के कारण अण्डों की रक्षा चाटने द्वारा हो सकती है। बिल के अन्दर नमी की अधिकता से दहिया का प्रकोप होना स्वाभाविक ही ज्ञात होता है। अतएव थूक के विनाशक गुण से उन दहियों का निराकरण सम्भव है। इतनी वैज्ञानिकता का तो चींटे-चींटियों में कभी ज्ञान सम्भव नहीं, परन्तु खाली ज्ञान न होने पर भी पशु-पक्षी या कीटजगत में अनेक दैनिक कौशलपूर्ण व्यापार केवल अन्तःवृत्ति या अन्तःप्रेरणा के ही कारण घटित होते रहने के उदाहरण सर्वत्र पाए जाते हैं।

पिपीलिका द्वारा अण्डों के चाटे जाने का यह भी कारण अनुभव किया जाता है कि कदाचित उन्हें चाटने में कुछ स्वाद मिला करता है। इसी कारण वे स्वभावतया उन्हें चाटा करती हैं।

त्रिज या तिज़न्मे रूप की व्याख्या सर्वज्ञात है। उनसे पहले एक आरम्भिक रूप का कोई शिशु उत्पन्न होता है जो प्रौढ़ रूप के

अंगों से सर्वथा विहीन या विभिन्न रूप का होता है। उसे इल्ली (लारवा) नाम दिया जाता है। पिपीलिका की इल्ली विद्रूप होती है। उसका शरीर अंकुश की भाँति मुड़ी गर्दन युक्त ज्ञात होता है। यह उसका दूसरा जन्म कहला सकता है, परन्तु इस स्थिति से भी किसी कायापलट की क्रिया द्वारा उसे साधारण रूप के आकार में परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। उसके लिए कीटों की इल्ली में शरीर के ऊपर किसी दृढ़ खाल की खोल के बनाने की आवश्यकता होती है। ऐसी कड़ी खोल इल्लियों के मुख से निकले किसी तत्व के रेशों से बुन सी जाती है। मुख का निकला पदार्थ कभी-कभी इतने सुन्दर रूप से सूत्र रूप में जमता है कि हमें रेशम सा सुन्दर पदार्थ एक कीट की इल्ली से प्राप्त होता है। वस्तुतः खोल धारण करने वाली इल्ली को योग-निद्रा में लिप्त प्राणी कहा जा सकता है। उसे वैज्ञानिक प्यूपा नाम देते हैं। प्यूपी या एक बचन में प्यूपा दीर्घ निद्रा में पड़कर शरीर का कायापलट होने का अवसर देता है। उस खोल से तीसरा जन्म पूर्ण रूप के अंगों युक्त यथार्थ कीट पतिंगे का होता है। पिपीलिका की इल्ली भी प्यूपा रूप से त्रिजन्मा नाम प्राप्त कर जन्म लेती।

रानी पिपीलिका का प्रारंभिक बहुधंधी जीवन एक झंझटों या महान कर्मठता की कहानी है। उधर नित्य अंडे देते जाना है। अंडों से इल्लियाँ निकलने लगती हैं। उनको प्यूपा रूप धारण करने में रानी पिपीलिका की सहायता अपेक्षित होती है। वे खोल के लिए सूत्रजाल उत्पन्न कर सकने की क्षमता तो अवश्य रखते हैं, परन्तु पहले सूत्र को अटकाने तथा खोल के बाह्य आधार के लिए कुछ वस्तु चाहिए। इल्लियाँ स्वयं कोई आधार नहीं प्राप्त कर सकतीं। इसके लिये रानी पिपीलिका उनके शरीर की खोल के आधार स्वरूप छोटे-छोटे बिल बनाकर उनमें उन्हें रख देती है या

उनके शरीर के ऊपर कुछ कूड़ा-कबाड़ आदि फेंक देती है। दोनों ही दशाओं में इल्लियों को अपने मुख से निकले सूत्र को आधारित करने का अवसर प्राप्त होता है। वे सूत्रजाल बुनकर दीर्घ निद्रित हो जाती हैं, परन्तु वे इस अवस्था से पूर्ण रूप के अंगों युक्त होने पर भी स्वयं अपने प्रयास से अपने सूत्रीय थैले से बाहर नहीं आ सकतीं। उस समय भी रानी पिपीलिका की सहायता अपेक्षित होती है। वह सिरे पर कोई छेदकर प्यूपा को बाहर आने का मार्ग खोलती है। खोल से कोई ध्वनि या गति का अनुभव कर ही कदाचित उसे ज्ञात होता है कि प्यूपा पूर्ण कायापलट कर वाहर आने योग्य हो गए हैं।

प्यूपा को अपनी थैली में एक सप्ताह से लेकर कई मासों तक की अवधि तक शयन करते रहकर पूर्णांगी पिपीलिका बनने का अवसर आता है। शयन की यह अवधि तापमान की विभिन्नता पर कदाचित निर्भर करती है। कितनी भयानक बात है कि तीसरे जन्म का कोई निश्चित समय नहीं और प्यूपा स्वयं सूत्रीय थैले से बाहर निकल नहीं सकती। अतएव माता द्वारा सतर्कता या स्थिति का ठीक ज्ञान होने का अवसर न तो उन शिशुओं की अकाल मृत्यु अवश्यम्भावी हो सकती है। जो सेवाएँ सतर्कता पूर्वक प्रारम्भ में रानी पिपीलिका को अपने अंडों, इल्लियों तथा प्यूपा रूप के शिशुओं की करनी पड़ती है, उन कार्यों का भार कालान्तर में सन्तानें ही अन्य भावी संन्तानों के संबंध में अपने ऊपर लेकर रानी पिपीलिका के कार्य का भार हल्का करती हैं। केवल अंडे देना रानी पिपीलिका का कार्य रह जाता है। उन अंडों की रक्षा, इल्लियों का पोषण तथा प्यूपा के बनने और खोल से बाहर निकल आने के लिए उसकी सहायता करने तथा बल न प्राप्त कर सकने तक उन शिशुओं को भी सँभालने और आहार देने का भार ये

श्रमिक पिपीलिकाएँ ही ले लेती हैं जो पहले उत्पन्न हुई होती हैं। नई बस्ती का कार्य इस प्रकार अग्रसर होता है।

माता या प्रारंभ के अंडों, इल्लियों या प्यूपा आदि का जन्म-धारण, पोषण उस स्थिति में ही होता है जब बिल में कोई आहार प्राप्त करने का साधन नहीं रहता। रक्षा के लिए कोई साधन या सहायक न होने से बिल का द्वार ऊपर बन्द ही रहता है जिससे एक बूँद पानी तथा एक दाना ही क्या, हवा तक नहीं मिलती। इल्लियों तथा दुर्बल पूर्णकाय उत्पन्न शिशुओं को भी आहार देने का कार्य करना होता है। उसके लिए रानी पिपीलिका अपने जातीय विधान के अनुसार निर्मित संघोदर के रक्षित पोष्य रस या खाद्य द्रव को उनके मुख में पहुँचाती है। खाद्य कोष समाप्त सा होने पर वह इनको विवशतावश वे अंडे ही दे सकती है जो नए उत्पन्न होते हैं। किसी भी प्रकार जाति की उस समय तक रक्षा करने का साधन ढूँढ़ना पड़ता है जब तक बिल का द्वार खोलकर बाहर से आहार प्राप्त करने में समर्थ उसकी संतानें जन्म धारण कर पुष्ट नहीं हो जातीं। कदाचित माता (रानी पिपीलिका) के इस घोर कष्ट का ऋण पूर्णतः चुकता करने के लिए हम पिपीलिकाओं में बाँझ मादाओं रूप की श्रमिक पिपीलिकाएँ जन्म धारण करते पाते हैं जिनका आजीवन व्रत केवल जाति-सेवा करना तथा भीष्म को भी कदाचित हरा देने वाला आजीवन ब्रह्मचर्य रखना होता है।

रानी पिपीलिका के नव-उपनिवेश स्थापन में बिल खोदने और प्रथम अंडे देने का अवसर आने तक कई सप्ताह लग जाते हैं। प्रथम अंडों के प्रथम श्रमिक पिपीलिकाओं की उत्पत्ति में चौदह सप्ताह लग जाते हैं। भूख से पीड़ित होने पर रानी द्वारा अंडों के खा जाने का अवसर होने की स्थिति में प्रथम प्रौढ़ श्रमिकों की

उत्पत्ति अधिक विलंब से हो सकती है। किन्तु एक बार श्रमिकों के उत्पन्न होने का क्रम प्रारम्भ हो जाने पर रानी पिपीलिका के शेष जीवन की विपत्तियाँ हल्की सी हो जाती हैं।

नई बस्ती या पिपीलिकाओं के उपनिवेश स्थापित होने के अनेक रूप हो सकते हैं। किसी पुरानी बस्ती या बिल में ही नई रानियाँ बढ़ाने की आवश्यकता हो सकती है। कोई स्थानीय उपनिवेश भी उनके द्वारा स्थापित कराया जा सकता है। इन विपतियों में मूल बस्ती से ही सम्बद्ध सा जीवन-कार्य चलना प्रारम्भ होने पर रानी पिपीलिका के क्लेश बहुत न्यून हो सकते हैं। उसे यथार्थतः जीवन-संघर्ष में कूदकर अपनी कष्टसहिष्णुता दिखाने का अवसर ही नहीं आता।

यथार्थ में ऐसी बस्तियों को उपनिवेश कहना एक उपहास ही है। नवीन गर्भान्वित रानी पिपीलिकाओं की यथार्थ कृति तो कहीं दूर नई बस्ती स्थापित कर ही जाति-प्रसार तथा जाति-रक्षण होती है। सुहाग-उड़ान का यही तात्पर्य होता है। उससे केवल अन्य जातियों के नर-मादाओं के संयोग द्वारा संतान-परिष्कार का ही अवसर नहीं होता बल्कि अनत्र जाति के फैलाव का भी कार्य पूर्ण होने का श्रीगणेश भी होता है। ऐसे कठिन उद्देश्य में केवल कुछ रानियाँ ही सफल होती है।

कुछ पिपीलिका जातियों में गर्भान्वित रानी पिपीलिका कुछ समय के लिए किसी अन्य जाति की पिपीलिका के विवर में परोप-जीवी या 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' की उक्ति की तरह बलात् अतिथि बनती है। उसके वहाँ प्रवेश पाने में अवश्य ही भारी बाधाएँ हो सकती हैं। परन्तु वह अपनी अंतर्वृत्तियों द्वारा उन बाधाओं के निराकरण का मार्ग निकालकर किसी प्रकार बिल के

भीतर अपना प्रवेश कर ही लेती है और जीवित रहने का भीषण प्रयास करती है।

पिपीलिकाओं में जाति की परस्पर परख मुख के आगे निकले संवेदनशील मुच्छसूत्रों से दूसरे की गंध जान लेने द्वारा होती हैं। बलात् अतिथि बनने वाली रानी पिपीलिका में स्वभावतः ही दूसरी जाति की गंध होती है किन्तु उसे गंध के लिए छद्म कार्य करना पड़ता है। वह पहले उस विजातीय पिपीलिका के बिल की झाँकी लेकर पड़ोस में पड़ी रहती है जिससे धीरे-धीरे उन पिपीलिकाओं की विशेष गंध कुछ ग्रहण कर सके। इसके बाद वह विरोध की चिन्ता न कर बलपूर्वक बिल के अन्दर प्रवेश करती है। इस विजातीय पिपीलिका की रानी के निकट धीरे-धीरे पहुँचकर वह कुछ मैत्री सी बनाने का प्रयत्न करती है। सन्तानोत्पादन में ही सतत संलग्न रहने से विजातीय पिपीलिका रानी की आक्रामक शक्ति का क्षय हो चुका रहता है। दूसरे किसी जन्तु को अत्यन्त शान्त पाकर उसे बेधड़क पड़े रहने देने की भी वृत्ति होती है। बिल के अन्य सदस्य भी अपनी खुली आँखों से यह बराबर देखते रहते हैं कि नव-आगन्तुक पिपीलिका रानी किसी प्रकार का द्रोहभाव नहीं प्रकट करती। अतएव वे धोखे में पड़कर चुप से पड़े रहते हैं। यह उनके नाश का पहला कार्य होता है।

धीरे-धीरे प्रगाढ़ मैत्री सा भाव प्रकट कर ही किसी दिन नव-आगन्तुक रानी बिल की स्वामिनी रानी पिपीलिका की पीठ पर सवार हो जाती है। उस समय भी बिल के अन्य सदस्य यह सोचते रहते हैं कि यह कुछ नहीं, केवल स्नेह का ही फल है। किन्तु नव-आगन्तुक रानी का तो यह घातक दाव होता है। अपने भीषण जबड़ों से वह धीरे-धीरे पुरानी रानी का शिरोच्छेद कर देती है। फिर उसके लिए वहाँ एकछत्र राज्य हो जाता है। निरीह श्रमिक

पिपीलिकाओं का जीवन तो सेवा तथा आजीवन ब्रह्मचर्य रहता है। यह विवेक उनमें कदाचित नहीं हो पाता कि वे कब किसकी सेवा कर रही हैं। नई रानी पिपीलिका अंडे देने लगती है। सदा की भाँति श्रमविभाग अनुसार अंडे सेने वाली श्रमिक पिपीलिकाएँ उन अंडों को भी ले जाकर उचित स्थल पर रखती हैं और उनके पोषण का अवसर देती हैं। कितना विचित्र दृश्य होता हैं। नई रानी को कुछ भी नहीं करना पड़ता। बना बनाया खेल सामने होता है। सेवा करने तथा आहार पहुँचाने के लिए श्रमिक पिपीलि-काएँ पहले से ही तैयार रहती हैं। अंडे सेने के लिए व्यवस्था पहले से ही प्रस्तुत रहती हैं। इल्ली बनती है, प्यूपा बनकर नई पिपीलि-काएँ नई जाति की प्रतिनिधि उत्पन्न होती हैं।

जब एक जाति की नवीन पिपीलिकाएँ उत्पन्न ही नहीं होती हैं तथा इस नवागन्तुक जाति की पिपीलिकाएँ बराबर ही उत्पन्न होती रहती हैं तो फल निश्चयात्मक होता है। धीरे-धीरे पुरानी जाति पूर्णतः नष्ट हो जाती है और उसकी जगह यह नवआगन्तुक जाति ही उसी पुराने बिल में पूर्णतया प्रसारित हो जाती है। परोप-जीवीपन का यह एक भयंकर उदाहरण ही है। उत्तरी अमेरिका की घोर काली पिपीलिका इसी प्रकार परोपजीवी रूप में मैदानी पीली पिपीलिका के बिल में उपनिवेश स्थापित करने में सफल होती है। केपरेबारा जाति की पिपीलिका में रानी को अपनी जाति के कितने ही श्रमिक अपने शरीर से चिपकाकर ले जाते देखा जाता है जो उसके उपनिवेश स्थापित करने में सहायक बनते हैं।

आमेजन के क्षेत्र की दास बनाने की वृत्ति रखने वाली पिपी-लिका "दास-निर्मायक आमेजन" जाति नाम से पुकारी जा सकती है। वह "पोलियेर्गस" नाम से विज्ञान जगत में ज्ञात है। इसकी नव गर्भान्वित रानी इतनी साहसी होती है कि एकाकी ही दूसरी

जाति के बिल पर आक्रमण कर बैठती है और उस जाति की श्रमिक पिपीलिकाएँ दास बनाने के लिए पकड़ लाती है। कार्य में शीघ्र सहायता प्राप्त करने के लिए इस जाति की रानी चतुरतापूर्वक खोल में सोने वाली इल्लियों (प्यूपा) को ही चुरा लाती है जिन्हें पोषण कराने या अधिक समय तक दुर्बल देखने की आवश्यकता न हो। साथ ही उन्हें अपनी स्थिति का भी ठीक पता न हो। उन से निकली श्रमिक पिपीलिकाएँ ही अपनी हरणकर्त्ता रानी की अनजाने रूप में सहायता करने लगती हैं। उसे ही अपना पोषक मान बैठती हैं।

एक अतिथि रानी पिपीलिका अमेरिका में होती है जो बड़े कौशल से काम लेती है। वह निर्बोध सी बनकर मिरमिका नाम की अन्य जाति की श्रमिक पिपीलिकाओं द्वारा घसीट लिए जाने देती है। उसे अपने बिल में उन पिपीलिकाओं द्वारा घसीट ले जाने का विशेष प्रयोजन होता है। यह अतिथि पिपीलिका रानी अपने शरीर से एक ऐसा रस स्रवित करती रहती है जिसे वे पिपीलिकाएँ चाटने में बड़ा सुस्वादु पाती है, परन्तु इस स्वाद का सौदा उन्हें बहुत महँगा पड़ता है। पहले उनके संघोदर से खाद्य रस का दान प्राप्त करती रहती है जिससे उसका पोषण होता जाय। फिर उनका संहार करती है।

फार्मिका रूफा नाम की काष्ठपिपीलिका प्रायः अपने पुराने बिल में वापस चली जाती है और वहाँ से कुछ श्रमिक सहायकों को साथ लेकर कोई निकटवर्ती नया उपनिवेश बनाती है। किन्तु वह अन्य जाति की किसी पिपीलिका के बिल में परोपजीवी रूप में रहकर या अकेले भी नया उपनिवेश स्थापित करती है, प्रायः एकाकी रहकर ही नवगर्भान्वित रानी पिपीलिका द्वारा उपनिवेश

स्थापित होने का एक मुख्य नियम सा कहा जा सकता है। अन्य रूप गौण या अपवाद ही माने जा सकते हैं।

प्राय: यह भ्रान्त धारणा पाई जाती है कि रानी पिपीलिकाओं तथा उनके श्रमिकों, सैनिकों आदि का संसार अल्पकाल में ही नष्ट हो जाता है किन्तु यह प्रमाणों द्वारा कहा जा सकता है कि पिपीलिकाएँ दीर्घकाल तक जीवित रहती हैं। उनका प्रतिवर्ष प्राणान्त नहीं होता। रानी पिपीलिका की आयु तो सबसे अधिक होती है। लार्ड एवेर बेरी के प्रयोगों द्वारा फार्मिका फूसा जाति की रानी पिपीलिका पन्द्रह वर्ष तक जीवित रहती पाई जा सकी है। एक इसी जाति की एक दूसरी रानी तेरह वर्ष तक जीवित रही। आठ या दस वर्ष तक तो अन्य जाति की रानियाँ जीती हैं।

यह बात सत्य अवश्य है कि लार्ड एवेरबरी द्वारा निरीक्षणों में प्रदर्शित रानी पिपीलिकाओं की आयु वैज्ञानिकों के निरीक्षण द्वारा ज्ञात आयुओं में सबसे अधिक है परन्तु ये निरीक्षण पोषित रूप में किए गए। अतएव स्वाभाविक रूप में जीवन-संघर्ष के बलिष्ट थपेड़ों का सामना होते रहने से औसत रूप में कम ही आयु माननी चाहिये। फिर भी पाँच से दस वर्ष तक की आयु भी औसत रूप मे मानना इतने छोटे कीटों की दीर्घायु कहने के लिए कम नहीं हैं। श्रमिक पिपीलिकाओं को पोषित रखकर बड़ी जाति के काले चींटे को लार्ड एवेरबरी ने सात या आठ वर्ष तक तथा अन्य वैज्ञानिकों ने चार पाँच वर्षों तक जीवित रहने का प्रमाण प्राप्त किया है। स्वाभाविक रूप में श्रमिक पिपीलिकाओ की औसत आयु तीन या चार वर्ष मानना उचित है। इन औसत आयुओं से हम अनुमान कर सकते हैं कि बहुसंख्यक नवगर्भान्वित रानी पिपीलिकाओं के असफल हो जाने से भी जाति की रक्षा कुछ समय तक पुरानी बस्तियों या बिलों के भी जीवनपूर्ण रहने तथा

धीरे-धीरे अन्यत्र थोड़ी नवीन बस्तियाँ बसते जाने से सम्भव होती है।

रानी पिपीलिका के जीवन पर दृष्टि डालने पर हमें ज्ञात होता है कि एक बार किसी प्रकार एक उपनिवेश की ठीक स्थापना कर लेने के बाद उसका जीवन एक सधा हुआ सर्वथा नवीनताहीन दैनिक कार्यपूर्ण हो जाता है। केवल अंडे देने छोड़कर कोई भी अन्य बात सम्मुख नहीं रहती। उसके लिये राजकीय कक्ष विशेष रूप का निर्मित होता है जो बिल के मध्यस्थल में स्थित होता है। उसमें वह चारों ओर श्रमिक पिपीलिकाओं से घिरी बन्दी सी रह कर ही शेष सारा जीवन व्यतीत करती है। एक क्षण के लिए भी वह अकेली नहीं छोड़ी जाती। जहाँ उसने कोई अंडा उत्पन्न किया कि चहुँधा घेरे पड़ी परिचारिकाओं में से एक पिपीलिका उसे उठाकर तुरन्त पोषण स्थल पर पहुँचा देती है जहाँ अन्य श्रमिक पिपीलिकाएँ उसके लालन-पालन का भार अपने ऊपर लेती हैं। चारों ओर सेविका पिपीलिकाओं की आँखों के चमकते ताल देख-देखकर रानी पिपीलिका यह अवश्य अनुभव करने लगती होगी कि उसका निवास कक्ष शीशमहल ही है। पार्श्व के दो बड़े नेत्रों तथा भाल पर स्थित तीन नेत्रों के ताल बहुसंख्यक होकर ऐसी भावना उत्पन्न कराने में सहज सफल होते कहे जा सकते हैं।

पाँच नेत्रों से देखकर प्रत्येक परिचारिका पिपीलिका रानी को जिस प्रकार घूरती पड़ी रहती हैं उन्हें देखकर दूसरे को एक भड़कीले परिवार का ही अनुभव हो सकता है। ये सभी परिचारिकाएँ रानी की संतान होती हैं या संतान तुल्य ही हो सकती हैं। रानी को भोजन कराना, स्वच्छ रखना या सब तरह से जीवन रक्षा का ध्यान रखना उनका मात्र लक्ष्य होता है। सारी जाति की कुशलता इस रानी पर ही निर्भर करती है। इसलिए उसकी इतनी सावधानी-

पूर्वक सेवा-सुश्रूषा तथा रक्षा की जाती है। यदि रानी मृत हो जाय तो उपनिवेश की अन्य सब पिपीलिकाओं को अपना अन्त समय ही उपस्थित जान पड़े। उनके लिए कुछ समय तक जीवित रहना अवश्य सम्भव है परन्तु बाह्य जगत में उनके सदस्यों की आए घड़ी इतनी अधिक संख्या में एक न एक बहाने मृत्यु होती रहती है कि रानी द्वारा त्वरा वेग से बहुसंख्यक संतानों की उत्पत्ति न होते रहने पर उनका बहुत थोड़े समय में ही अन्त हो जाय। अप-वाद स्वरूप कभी-कभी ऐसा सम्भव होता है कि कोई नई सजातीय नवगर्भान्वित रानी प्राप्त कर उस उपनिवेश को जीवित रखने की व्यवस्था की जाय।

एक रानी का सदा सेविकाओं से घिरा रहने वाला जीवन कैसा ऊबने वाला होता होगा। वह कोई भी इच्छा नहीं रख सकती, कहीं भी आ-जा नहीं सकती। जिधर भी तनिक सा वह खिसकती है, चारों ओर घेरे पड़ी सेविका पिपीलिका का दल भी रबड़ के आवेष्ठन की तरह कुछ स्थानान्तरित हो कर उसे फिर उसी प्रकार घेरे में रख लेता है। इन सेविकाओं में या अंग रक्षकों में कभी कोई इस रानी को किसी दिशा में जाने के लिए संकेत करता है। इसके लिए कोई अंग रक्षक उसकी संवेदनशील मूँछें निर्दिष्ट दिशा में खींच पड़ता है या क्षमा-याचनापूर्वक धीरे से उसके पैर को काट लेता है अथवा उसके उदर में धीरे से धक्का देता है। इन संकेतों से वह निर्दिष्ट दिशा में रानी को जाने के लिए प्रेरित करता है, वह निर्दिष्ट दिशा सदा विवर के मुख की विलोम दिशा में ही भीतर भाग की ओर अधिक रक्षित स्थान में जाने की होती है।

रानी को बिल में बंदी रख लेने का अभिप्राय केवल किसी तरह के संकट में पड़ने या अंडे देने का महत्वपूर्ण कार्य के लिए समय नष्ट न होने देने का ही है। यह तथ्य सब अंग-रक्षकों, परि-

चारिकाओं आदि को किसी नैसर्गिक विधान से ज्ञात सा रहता है अथवा इस उद्देश्य से वे अपनी अन्तर्वृत्तियों द्वारा किसी प्रकार रानी को सुरक्षित बंद रखने का प्रयत्न करते हैं।

उपनिवेशों के अन्दर श्रमिक पिपीलिकाओं की सतर्कता उल्लेखनीय है। किसी बिल को यदि किसी प्रकार आघात पहुँच जाय या कोई अनहोनी विपत्ति आ जाय तो श्रमिक पिपीलिकाएँ अपने जीवन को संकट में डालकर भी संघ या बिल की रक्षा के कार्य में लिप्त होती हैं। सभी अंडों, प्यूपा तथा इल्लियों को ये ढो-ढोकर कहीं सुरक्षित भाग में पहुँचाती हैं। इतने क्षुद्राकार अंडों तथा अत्यन्त कोमलकाय इल्लियों को ये अपने उस तीव्र जबड़े में दबाकर ढोती हैं जिनसे कोई दृढ़ वस्तु भी काट सकना कठिन कार्य नहीं होता। किन्तु सूक्ष्मकाय इल्लियों, प्यूपा, अंडों आदि को इस प्रकार ढोती हैं कि उनके अङ्ग को तनिक भी क्षति नहीं पहुँचने पाती।

व्यवस्था के किसी भाग स्वरूप आर्द्रता या तापमान की विभिन्नता के कारण अंडों तथा इल्लियों को स्थानान्तरित करने के लिए कहीं बड़े ढूहे रूप में बिल के अन्दर एकत्रित पाया जाता है। कभी बिल के ऊपर भी इन्हें ढोये जाता देखा जाता है। जो कुछ भी सावधानी जाति-रक्षा के लिए आवश्यक होती है या परिश्रम अपेक्षित होता है; उपनिवेश की सभी श्रमिक पिपीलिकाए हर्षपूर्वक करती पाई जाती हैं।

पिपीलिका के बिल या उपनिवेश का कार्य सुचारु रूप में संचालित करने के लिए एक विशेष श्रेणी का नामोल्लेख आवश्यक है। इन पिपीलिकाओं को उत्तेजना-केन्द्र कह सकते हैं। उत्तेजना-केन्द्रीय पिपीलिकाएँ पिपीलिका जगत का मस्तिष्क कही जा सकती

हैं। यथार्थ में उनमें कुछ सीख सकने की अंतर्वृत्ति शीघ्र होती है। किसी काम को करने की भावना भी उनमें पहले अन्त:प्रेरणा से जागृत हो जाती है। वे इस अन्त: प्रेरणा के ही कारण कोई कार्य आरंभ करती हैं। चारा ढूँढना, चारे के लिए कोई क्षेत्र ज्ञात करना या अन्य कोई कार्य पहले उनकी अन्त: प्रेरणा में आता है। इसके अनुसार वे उस कार्य में आगे बढ़ती हैं, परन्तु उसे करते रहना ही उनका लक्ष्य नहीं होता। वे तो उस कार्य के लिए केवल मार्गदर्शिका मात्र होती हैं। उनके पीछे अन्य साधारण श्रमिक वही कार्य करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। अत: मार्ग भर दिखा देने के बाद उत्तेजना-केन्द्र को पुन: वही कार्य करते रहने में लगे नहीं रहना पड़ता। यह एक महत्व की ही बात है कि कुछ विशेष पिपीलिका-श्रेणी में पहले ही नवीन कार्यों या बिल की आवश्यकता पूर्ति करने के कार्यों को ज्ञात करने तथा उसके पूर्ण करने के मार्गों का ज्ञान होता है। अन्यथा इतनी भीड़-भाड़ के उपनिवेश का किसी प्रकार पोषण करने की व्यवस्था असंभव हो जाय।

उपनिवेश में किसी समय ४०००० से लेकर पाँच लाख तक पिपीलिकाएँ विद्यमान होती हैं। उनके लिए आहार का एकत्र करना कठिन कार्य हो सकता है। ४०००० पिपीलिकाओं के उपनिवेश को इतने आहार की आवश्यकता पड़ सकती है जो २०००० कीटों के रक्त-मांस के बराबर हो। इस भारी संख्या के सब सदस्यों को बाहर हो नहीं पाया जाता। जितनी पिपीलिकाएँ बाहर आहार ढूँढ़ने निकली होती हैं उससे कई गुनी अधिक बिल के अन्दर विद्यमान रहती हैं। इसलिए उत्तेजना-केन्द्रीय पिपीलिकाओं की अंतर्वृत्ति से निकली योजनाओं या साधनों से श्रमिक पिपीलिकाएँ अपने संघ या उपनिवेश के लिए यथेष्ट आहार ला सकने में समर्थ होती हैं। क्षुद्र जगह की यह सामाजिक व्यवस्था अवश्य ही प्रशंसा की वस्तु

है जिससे उपनिवेश जीवित रह पाते तथा अन्य उपनिवेशों के स्रोत बनने में समर्थ हो सकते हैं। इन सब की सफलता का श्रेय उस एकाकी रानी पिपीलिका को देना आवश्यक है जिसके द्वारा किसी समय उपनिवेश का किसी स्थान में साहसपूर्ण सूत्रपात हो सका होता है।

राजगीर पिपीलिकाएँ

चींटी-चींटों के आकार जहाँ एक ओर यथेष्ट बड़े रूप में दिखाई पड़ते हैं, वहाँ दूसरी ओर नन्हीं चींटी रूप में इतना छोटा आकार भी प्राप्त होता है जो एक बड़ी सुई के छेद में भी प्रवेश कर जाय। इन विभिन्न रूपों की जातियाँ अगणित पाई जाती हैं। कहीं पहाड़ी के अंचल में प्रत्येक पत्थर के ढोके के नीचे एक पिपीलिका उपनिवेश होना संभव हो सकता है। इतनी अधिक संख्या में बिलों की रचना देखकर हमारा ध्यान उनके निर्माण की ओर जाता है। यह देखकर हमें आश्चर्य होता है कि ऐसे नन्हें कीट के पास न तो कहीं से कोई धातु का हथियार होता है और न कोई हथियार सुलभ होने पर भी वे चला ही सकने की क्षमता रखती है। यदि कोई उपकरण हो भी जिनका वे उपयोग कर सकें तो उसका इतना छोटा रूप बनना भी असंभव सा कहा जा सकता। फिर भी निहत्थे तथा हथियार हीन अवस्था में जीवन की प्रथम आवश्यकता के लिए वे बिल खोदकर अपने भारी उपनिवेश भूमि के तल के नीचे स्थापित कर सकने में समर्थ हो पाती हैं। इसका साधन अवश्य विस्मय की बात हो सकती है।

चींटे के मुख की पकड़ हमें देखने का अवसर मिलता है। यदि किसी अङ्ग की त्वचा में वह अपने मुख के जबड़ों को गड़ा दे तो उसे छुड़ाना आसान नहीं होता। प्रायः सिर विच्छेद कर हो उस का शेष शरीर पृथक तोड़ फेकने से उन जबड़ों की पकड़ शिथिल होती है। चींटे के जबड़े में सँड़सी (संदंश) की भाँति अगल-बगल

के भुजाकार सिरे जुटा लेने की शक्ति होती है। इस दृढ़-शक्ति से वह बहुत काम निकाल सकता है। संदंश की तरह अगल-बगल से अगले सिरे जुटाने के कारण इस अंग को संदंश-हनु या मुख (मैंडिबुल) कहा जा सकता है। इस अङ्ग के विविध कार्य या उपयोग होते हैं। यथार्थ में इसके द्वारा ही चींटे-चींटियों के भवन-निर्माण कार्य में उपयुक्त होने वाले हथियार अनेक रूप के रखने पड़ते हैं। आधुनिक यन्त्रों की बात हम नहीं करते। हथियार शब्द ही उन उपकरणों का द्योतन करता है जो हाथ द्वारा उपयुक्त हों। हम राजगीर के हाथ द्वारा उपयुक्त होने वाले उपकरणों में कन्नी, थापी, हथौड़ी, बँसुली, आदि को जानते हैं। अन्य साधारण श्रमिकों द्वारा फावड़े, बेलचे, कुदाल आदि की भी मिट्टी की खुदाई में आवश्यकता पड़ती है। परन्तु अपने भवन-निर्माण में इन सब उपकरणों के स्थान पर केवल अपने संदंश-मुख का उपयोग कर ही राजगीर पिपीलिका अपना निर्माण-कौशल दिखाती हैं।

पिपीलिका के संदंश-मुख का उपयोग अन्य उपकरणों की भाँति भी होकर महान आश्चर्य का विषय बनता है। राजगीर के हथियारों के अतिरिक्त लुहार के भी हथियारों का भी वह स्थान ग्रहण करता है। आरी की तरह चीरने, छुरी की तरह काटने, छेनी या रुखानी की तरह भेदन करने तथा अन्य पिपीलिकाओं का गला घोंटने के लिए फाँसी के फंदे भी भाँति भी उसका उपयोग होता है। दोनों ओर मुख या हनु की पार्श्वभुजा की तरह सामने फैले संदंश-मुख यदि परस्पर सटे होते हैं तो उसके दाँते एक दूसरे से इस प्रकार ग्रसित हो जाते हैं कि एक बेलचे या चम्मच का अच्छा नमूना बन जाते हैं। उसमें कुछ वस्तु ढो सकना उसके लिए संभव हो सकता है। अतएव हम यह अनुभव कर सकते हैं कि निहत्थे रूप में होने पर हम अपने हाथों में दस उँगलियाँ होने पर भी बहुत अधिक

कार्य-कुशलता नहीं दिखा सकते, परन्तु पिपीलिकाएँ अपने आकार की तुलना में हम से कुछ बातों में बाजी मार ले जाती कही जा सकती हैं। हम तो बिना सिखाए अपनी दस उँगलियों द्वारा भी कोई अद्‌भुत हस्तकौशल दिखाने में अक्षम ही होते हैं, परन्तु पिपीलिकाएँ केवल अन्तर्बुद्धि द्वारा ही अपने विविध कर्मोपयोगी संदंश-मुख द्वारा विलक्षण कार्य कर दिखाती हैं।

लसिका (थूक) को हम कितनी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपनी घृणा-भावना को मूर्त रूप देने के लिए या कोई गन्दी वस्तु देखकर हम थूक देने की वृत्ति अपने अन्दर पाते हैं। हमारे शरीर के पाचन में उसका उपयोग आंतरिक रूप में अवश्य होता है। परन्तु पिपीलिकाएँ अपने थूक को बाहर निकालकर विचित्र उपयोग में लाती हैं। वे कोई द्रव-सी रासायनिक वस्तु कहीं बाजार से खरीद लाने की बुद्धि या क्षमता नहीं रखतीं। अतएव अपने शरीर के ही अंगों या उनसे उत्पन्न किसी पदार्थ का उपयोग किसी भी कार्य के लिए किसी प्रकार करने का उद्योग कर सकती हैं। उनका थूक तैल मय होता है। वह उनके शरीर की कठोर त्वचा (उनकी चर्मीय अस्थि) पर लकड़ी के पालिश या वार्निश की भाँति ही चिकनाने के लिए प्रयुक्त होता है। शरीर की स्वच्छता करने के समय यह थूक को मरहम की भाँति अपने बालों में पोत देती है। किन्तु इन सबसे अधिक विचित्र उपयोग तो एक दूसरा ही स्मरण हो आता है। यह थूक से मिट्टी गीली कर कच्ची ईंटें बना लेना है। पिपीलिकाओं के थूक में यह शक्ति होती है कि मिट्टी की छोटी गोली को कड़ाकर ईंट सा रूप दें। उसे पिपीलिका की ईंट कहा जा सकता है।

इन रूपों में पिपीलिका के शरीर में ही संदंश-हनु या संदंश-मुख के रूप में अनेक औजारों के समान उपयोग कर सकने के उपकरण तथा विविध उपयोग के उपयुक्त थूक की व्यवस्था से

अद्भुत कार्यशक्ति होती है। शिल्प कला, युद्ध, औषधि तथा सौन्दर्य साधन आदि के उपयुक्त वस्तुएँ विद्यमान पाकर हम पिपीलिका के शरीर को एक विचित्र शस्त्रागार, बहुमुखी वस्तु-भंडार आदि कह सकते हैं।

पिपीलिकाओं की पन्द्रह सहस्र से भी अधिक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश भूमि के अन्दर ही खुदाई कर अपने निवास-स्थल बनाती हैं। हमारे घरों की तरह उनके निवास भूतल के ऊपर बनते गए नहीं होते किन्तु वृक्षों झाड़ियों आदि में रहने वाली पिपीलिका की जातियाँ भी होती हैं। कुछ ऐसी भी हैं जो पंक तथा कागज के घोंसले बनाकर रहती हैं किन्तु साधारणतया भूमि के अन्दर ही उनके गृह बने होते हैं। वहाँ बिल की अंधकारपूर्ण, ठंडी, खाकी पेंदी में पिपीलिकाओं का आनन्दपूर्वक निवास होता है।

पिपीलिका के बिलों का प्रारंभ नवगर्भान्वित रानी पिपीलिका द्वारा एक छोटे गड्ढे रूप में होने की चर्चा की ही जा चुकी है। वह अकेले रानी के उद्योग या हस्तकौशल का परिणाम होता है। इसी एक मात्र कक्ष में जब नई सन्तान उत्पन्न होती है तो वह माता का गृह-निर्माण रूप का ऋण चुकाने के लिए बिल के आकार की वृद्धि पर अपने अन्य सदस्यों के लिए स्थान बनाती हैं। जैसे-जैसे उनकी संख्या बढ़ती जाती है, प्रत्येक पीढ़ी की पिपीलिकाएँ आगे की पीढ़ियों के लिए बिल का विस्तार कर यथेष्ट स्थान बना लेती हैं। पीढ़ी से हमारा तात्पर्य उन रानी पिपीलिकाओं से ही अपेक्षाकृत बाद के समय में उत्पन्न संतानों से है। अतएव पूर्ववर्ती अंडों तथा इल्लियों से उत्पन्न संतान द्वारा कालान्तर में उत्पन्न अंडों तथा इल्लियों से उत्पन्न संतानों के पालन-पोषण तथा निवास के लिए पहले से ही विस्तृत स्थान का प्रबंध बिल को बढ़ाकर किया गया होता है। इस तरह हम बिल को उस उपनिवेश के नष्टप्राय

न होने तक सतत विस्तृत बनते जाते ही पाते हैं। पिपीलिकाओं के सतत गृह-निर्माण में संलग्न रहने का कारण उनका अगली संतानों की सुविधा के लिए प्रबन्ध करना ही होता है।

जब पहले-पहल उत्पन्न संतानें केवल माता द्वारा बने बिल में पाली-पोषी जाने के बाद इतने पुष्ट रूप की हो जाती हैं कि बाहर जाकर आहार प्राप्त करने या अन्य दूसरे कार्यों में संलग्न हो सकें तो पहला काम बन्द बिल के द्वार को किसी प्रकार खोलकर बाहर जाने का मार्ग मुक्त करना होता है। यह उतावली संतान का बाह्य संसार से सम्पर्क स्थापित करने की उत्सुकता का फल होता है।

यदि आप मैदान या वृक्ष के पादस्थल या घरों में किसी ओर ध्यान देकर देखें तो मिट्टी के नन्हें-नन्हें कणों से कोई नन्हीं पहाड़ी सी बनी दिखाई पड़ेगी। उसके मध्य में ज्वालामुखी के मुख समान छिद्र होगा। पिपीलिका का वही बिल होगा जिसमें सतत आती जाती पिपीलिकाएँ देखी जा सकेंगी। बस्ती के निकट या मैदानों में तो हम इंच-आध इंच ऊँची दीवाल सी ही खड़ी पाएँगे परन्तु अफ्रीका के कुछ यात्रियों का कथन है कि वहाँ पिपीलिकाओं की कुछ जातियों के विवर के चारों ओर मनुष्य की ऊँचाई से भी तिगुनी ऊँची दीवालें या पिपीलिका-पहाड़ियाँ सी उठी दिखाई पड़ती हैं। इतनी ऊँची दीवालें बिल के अन्दर से उनके द्वारा खुदाई कर निकाली मिट्टी के कणों द्वारा ही बनी होंगी। इसे अतिशयोक्ति कहा जाय तो भी हमें अनेक ऊँचाई की पिपीलिका पहाड़ियाँ मिल सकती हैं। इनमें कहीं बिल के छोटे कक्ष को तो मटर के बराबर आकार या फैलाव का पाया जाता है तो कहीं बड़े आकारों में बिल के कक्ष का फैलाव बड़े पीपे के बराबर हो सकता है। इन कक्षों के आकार में विभिन्नता होने पर भी विचित्रतामय अवश्य देखा

जाता है। उनमें प्रायः कक्षों के साथ ही सम्बद्ध बड़े बरामदे, मार्ग आदि नीचे-ऊपर, आगे-पीछे चारों ओर फैले होते हैं।

पिपीलिका के लिए सीधे, उल्टे, अगल-बगल या तिरछे तल में कोई अन्तर नहीं होता। वह सब जगह सुविधापूर्वक चल सकती है। खड़ी दीवाल या छत से उल्टे लटककर चलने में भी उसे उतनी ही सुगमता होती है जितनी हमें सीधे साधारण तल पर होती है। अतएव वह अपने विस्तृत बिल में चारों ओर घूम सकती है।

सभी प्राणियों को किसी न किसी प्रकार श्वास लेने के लिए वायु की आवश्यकता होती है। पिपीलिकाओं के लिए भी इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यवस्था रहती है। इसके लिए उनकी पहाड़ी के निम्न भाग में कई द्वार होते हैं। छोटे बिलों में मध्यवर्ती भाग में ही छिद्र होता है जिससे हवा भीतर पहुँचती है। उनके शत्रु भी बहुतेरे होते हैं। अतएव जहाँ श्वास लेने के लिए वायु के मार्ग की आवश्यकता होती है वहाँ उन मार्गों या द्वारों की रक्षा का भी प्रबंध रखना पड़ता है। इसके लिए अनेक जाति की पिपीलिकाओं में विभिन्न रूप की व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं। प्रारम्भ में तो रानी को अकेले बिल का द्वार बन्द रखने से भी कार्य चल जाता है, परन्तु उपनिवेश स्थापित हो जाने पर सदा द्वार बन्द रखने से जीवन कार्य चल ही नहीं सकता। बाहर से आहार प्राप्त करने की सदा ही आवश्यकता रहती है। इसलिए ऐसे द्वार ही अपेक्षित होते हैं जो दिन को आहार लेने जाने के लिए खुले रहें और रात को बन्द रखे जायँ। अतएव किसी प्रकार ऐसे बन्द रक्खे जायँ कि भीतर जाने वाली पिपीलिकाओं के लिए पहचान कर लेने पर मार्ग खोल दिया जाय या भीतर से बाहर जाने वाली पिपीलिकाओं को बाहर निकल जाने दिया जाय, अन्यथा वे बराबर बन्द ही रहें। जेलों में कैदियों के आने-जाने के समय ही फाटक खुलने

और बाद में सदा बन्द रहने की भाँति ही कुछ पिपीलिकाओं में भी व्यवस्था पाई जाती है ।

पिपीलिकाओं के पास कोई फाटक लगाने के लिए किवाड़ या मिस्त्री नहीं हो सकता, फिर भी वे अपना प्रयोजन किस प्रकार पूर्ण करती हैं । यह एक कौतूहल का ही विषय है । इसके लिए कुछ जातियों की पिपीलिकाएँ बिल के द्वार के भीतर सैनिकों का दल रखती हैं । अतएव बिल के मुख के बाहर हमें छोटे-छोटे मुखों का झुण्ड ही दिखाई पड़ सकता है जिसके संवेदनशील मुच्छीय बाल चारों ओर संतत लहराते दिखाई देते रहते हैं ।

कुछ पिपीलिकाएँ केवल सन्ध्या होने पर ही बिल का द्वार बंद करती हैं । इसके लिये द्वार पर कोई छोटी शहतीर सी रख दी जाती है । उसके ऊपर घास-पात या अन्य काष्ठ खंड डाल दिए जाते हैं । प्रातःकाल ओस सूख जाने के बाद यह द्वार खुलता है जब श्रमिक पिपीलिकाओं के बाहर निकलकर आहार प्राप्त करने जाने का अवसर होता है, दो-तीन पिपीलिकाएँ पहले बाहर निकल आती हैं और द्वार पर के अवरोध को दूर करती है । उसके पश्चात् द्वार खुलने से श्रमिक पिपीलिकाओं का झुण्ड बाहर निकल पड़ता है । कुछ पिपीलिकाओं में बिल का द्वार बन्द करने के लिए कंकड़ या ठीकरों का उपयोग हो सकता है । वे भी प्रातःकाल हटाए जाते हैं और द्वार खुल जाता है । सन्ध्या न होने पर भी तूफान आने के पूर्व पिपीलिकाओं को उसके आगमन का कुछ आभास सा मिलने से द्वार बन्द करते देखा जाता है । इससे उनके ऋतु-ज्ञान का प्रमाण मिलता है । अकस्मात् जल-प्रलय होने पर भी द्वार बन्द किया जा सकता है । पानी अचानक बढ़ जाने के कारण बाढ़ आने पर वे स्वयं ही द्वार को घेर कर भीतर से बन्द कर देने का उपक्रम कर लेती हैं । अपने शरीर को एक दूसरे से चिपकाकर

द्वार बिल्कुल अवरुद्ध कर देती हैं किन्तु इस कार्य में उनका डूब मरना ही निश्चित परिणाम नहीं कहा जा सकता क्योंकि नौ घन्टे तक पानी में डूबे रहकर भी उन्हें जीवित देखा जा सका है।

अपनी माता द्वारा खोदे हुए प्रारम्भिक विवर-कक्ष को विस्तृत करने के लिए श्रमिक पिपीलिकाएँ चारों ओर नये-नये कक्ष या बिल खोदने लगती हैं तथा उसमें खुदाई में निकली मिट्टी के कण बिल के बाहर द्वार के चारों ओर पहाड़ी या चहारदीवारी रूप में सजाने लगती हैं। कुछ पिपीलिकाएँ डरपोक होती हैं वे अन्य शत्रुओं के आक्रमण से भय खाकर अपने बिल का स्थान ज्ञात नहीं कराना चाहतीं। अतएव वे अन्दर की खुदाई में निकली मिट्टी के कण द्वार पर न रख पृथक दूर फेंक आया करती हैं। अतएव जिन शत्रु कीटों द्वारा उनके अन्डे खाए जाने का भय होता है उन्हें बिल का शीघ्र पता नहीं लगता। श्रमिक पिपीलिकाओं के संदंश-मुखों के जोड़ से बेलचे की भाँति आकार बन जाता है जिसमें वे मिट्टी के छोटे कण उठाकर बाहर बिल के निकट या दूर फेंक सकती हैं। जिन पिपीलिकाओं के अंडे अन्य कीटों द्वारा खाए जाने की आशंका होती है, वे यदि अपने संदंश मुखों के बेलचे से कुछ अधिक काम लेकर मिट्टी के कण दूर-दूर न फेंक आया करें तो बिल के मुख के पास ढेरी लगने से उनके शत्रुओं को तुरन्त ही पता लग जाय कि कोई नया पिपीलिका-उपनिवेश बन रहा है। अपने बिल की खुदाई में पिपीलिकाएँ सुविधा उत्पन्न करने में भी समर्थ होती हैं। यदि वे देखती हैं कि मिट्टी इतनी कड़ी है कि सहज खुदाई नहीं हो सकती, तो उसमें नमी लाकर नर्म करने का प्रयत्न करती हैं। मिट्टी ऐसी नर्म होनी चाहिये कि बिल खुद सके तथा इतनी भुरभुरी न हो कि बाहर ले जा सकने योग्य उसके नन्हें लौंदे न बन सकें। छोटे लौंदे या गेंद रूप में मिट्टी कण बनाकर

ही वे अपने संदंशीय मुख या हनु की संयुक्त प्याली या बेलचे में उसे ढो सकती हैं। नमी पहुँचाने के लिए प्रत्येक श्रमिक पिपीलिका अपने मुख का थूक प्रयुक्त करने का उद्योग करती है किन्तु मिट्टी बहुत अधिक सूखी होने पर थूक से काम नहीं निकल सकता। उसके लिए श्रमपूर्वक कहीं से पानी ढो लाने की आवश्यकता होती है। श्रमिक पिपीलिकाएँ यह श्रम-साध्य कार्य कर दिखाती हैं। वे कहीं निकट के जलखंड तक जाती हैं तथा अपने निचले ओठ की एक थैली को पानी ढोने की मशक समान प्रयुक्त करती हैं। यह जलवाहक पिपीलिका ·भिश्ती के उद्यम का नमूना होता है। इन जलवाहक श्रमिक पिपीलिकाओं द्वारा इतना पानी ढो लाया जा सकता है कि बिल के अन्दर एक दिन में आधा सेर तक मिट्टी आर्द्र बना सकती हैं। जब उनके द्वारा इतनी मिट्टी गीली कर सकना एक दिन में ही सम्भव है तो यह अनुमान किया जा सकता है कि एक-एक पिपीलिका किस प्रकार जल की मात्रा अपने नन्हें मुख में ढो लाती होगी।

पिपीलिका के ऐसे कार्य को देखकर कदाचित हम उसके श्रम का मूल्यांकन न कर सकें परन्तु पिपीलिका के क्षुद्र आकार के कारण इतना अधिक परिश्रम भी बहुत अधिक है। यदि हम अपने श्रम से आकार की तुलना में उसके श्रम का मिलान करें तो ज्ञात होगा कि वे तुलनात्मक रूप में हमसे बहुत ही अधिक बलिष्ठ होती हैं। यदि पिपीलिकाएँ मनुष्य के बराबर बड़ी होतीं तो एक पिपीलिका में १०० अश्व शक्ति का समावेश पाया जाता।

पिपीलिकाएँ अपने गृह-निर्माण के लिए शिल्प-ज्ञान के कार्यों में भूमि की खुदाई, बढ़ईगीरी, राजगीरी तथा संगतराश आदि के जो भी कार्य कर दिखाती हैं, उस सफलता के लिए उनका संदंश मुख या संदंश-हनु ही एक मात्र हथियार प्रयुक्त होता है। मिट्टी

के नन्हें लोंदे ईंट सा गढ़कर अपने थूक से पुष्ट आकार कर वे राजगीर की भाँति कोई दीवाल, छत आदि बनाने के लिये जड़ती हैं। उसे हथौड़ी से ठोककर गारे के ऊपर बैठाने की भाँति अपने संदंश मुख से विशद रूप में ठोकती हैं। खुदाई के लिये उनका संदंश मुख (सँड़सीनुमा जबड़ा) बरमे की तरह प्रयुक्त होता है। बाष्प-चालित बेलचों की भाँति वे उसे मिट्टी में धँसा कर खनन कार्य करती हैं तथा मिट्टी के कण उन्हीं में ढो-ढोकर बिल के बाहर पहुँचाती हैं।

बिल के भीतर कोई राजगीर पिपीलिका कन्नी से दीवाल चिकनाने का अनुकरण अपने सँड़सीनुमा जबड़ों से ही करती रहती है। छत पर ठीकरे या कंकड़ जमाती हो सकती है। या घासपात या अन्य पदार्थ ही मढ़ती रह सकती है। उधर जल-वाहक श्रमिक (भिश्ती) पिपीलिकाएँ अपने जलभांड रूप ओष्ठीय प्रकोष्ठ में जल लाने का उपक्रम करती रहती हैं। गृह-निर्माण में एक क्षण के लिए भी कहीं कार्य स्थगित नहीं दिखाई पड़ सकता। कार्य पूर्ण होने तक सतत उद्योग जारी रहता है। रातदिन गृह-निर्माण कार्य चलता रहता है। उनका कोई मेठ या सूत्रधार नहीं होता, निरीक्षक की कहीं आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक को अपना कोई न कोई कार्य निर्वाचित कर लिए देखा जाता है। काम के हल्केपन या कठोरपन, सरलता या दुरूहता, तीव्रता या ढीलेपन के सम्बन्ध में कहीं किसी से कोई विवाद या ईर्षा नहीं करता। हड़ताल का कहीं नाम नहीं देखा जाता। यदि कार्य में संलग्न रहने की कोई भी भावना होती है तो वह संघ के कार्य में सब प्रकार से योग दान करने की अंतर्वृत्ति ही होती है।

बिल के पूर्ण निर्मित हो जाने पर उसे स्वच्छ रखने तथा मरम्मत करते रहने का पूर्ण ध्यान रक्खा जाता है। उनका स्वच्छता

स्थापक विभाग पिपीलिका-पथों की सफाई में संलग्न होता है।
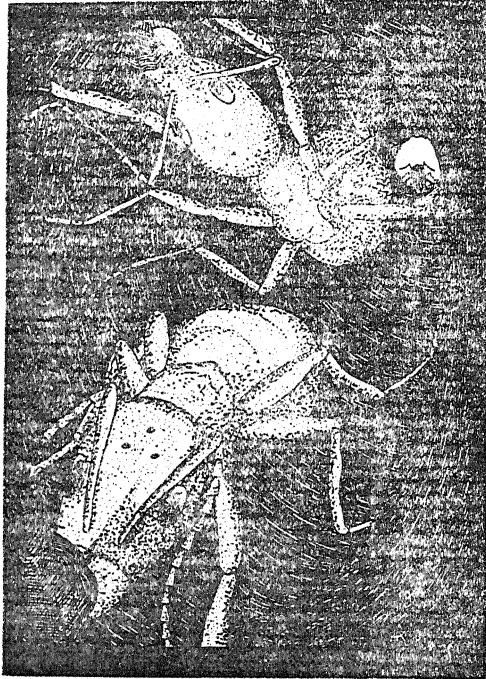
कारीगर पिपीलिकाएँ बिल को भीतर से चिकनाती हैं।

कहीं भी भग्न भाग मरम्मत कर दिया जाता है। कोई भी चिथड़ा, रद्दी टुकड़ा कहीं फेंकने पर कोई पिपीलिका लज्जित हुए बिना नहीं रह सकती। रात को आँधी पानी, तूफान आदि के कारण क्षति या अस्वच्छ स्थिति होने पर प्रातःकाल ही उसे ठीक कर लेने का उद्योग किया जाता है। चीटे-चींटों सरीखे क्षुद्र कीटों की विभक्तियाँ

भी हमारे लिए अकल्पनीय ही होती हैं। जब वर्षा का जल गिरता है तो पिपीलिका जगत के लिए वह नन्हीं बूँदों की झड़ी या साधारण वृष्टि नहीं होती, उनके नन्हें से आकार के लिए तो एक-एक बूँद जल भी इतना ही भीषण होता है जितना हमारे सिर पर एक एक बार में गिराया एक-एक कंडाल (टब) पानी हो सकता है। अतएव उनके लिये तो यह कोई घोर जल-वर्षण रूप की प्रलय क्रिया या महाविपत्ति ही हो सकती है। किसी कंडाल का पानी सीधे ही बार-बार हमारे सिर पर ऊपर से फेंका जाता रहे तो हम उसको कैसी बड़ा यातना समझ सकते हैं। यदि पिपीलिकाओं के शरीर में हमारे शरीर की भाँति भंजनशील अस्थियाँ होतीं तो वर्षा की इन बूँदों के ही प्रहार से वे ध्वस्त हो जातीं। उनके सिर पर एक भारी बूँद तो ऐसी ही हो सकती है जैसे हमारे सिर पर २५,३० मन पानी एक बार ही उँडेला गया हो। इस स्थिति में ही पिपीलिका को जीवन व्यतीत कर जीवित रहते पाया जाता है। वर्षा रुकते ही हम उनको बिलों के निकट दौड़-धूप करते देख सकते हैं। बिल के अन्दर वर्षा के कारण क्षत भाग या ऊपर से पहुँची धूल-मिट्टी आदि को हटाने के लिये श्रमिक पिपीलिकाओं को मुख में रखकर मिट्टी कण बार-बार बिल के बाहर लाते और निर्दिष्ट स्थान पर रख जाते पाया जाता है। मिट्टी कणों को बार-बार ढोने में कभी-कभी तीव्रता के कारण आठ-दस श्रमिक पिपीलिकाओं को द्वार को अवरुद्ध सा कर आते-जाते पाया जाता है।

दैवी विपत्तियों के अतिरिक्त भी अन्य विपत्तियाँ झेलने के लिये पिपीलिकाओं को विवश होना पड़ सकता है। किसी मनुष्य या पशु के पैरों तले बिल के थोड़े या अधिक भाग का दब जाना भी उनके लिये एक असह्य घटना हो सकती है परन्तु वे अपनी

शक्ति भर सुधार कर या अन्यत्र नया बिल बना कर जीवित रहने का प्रयास करती हैं।

पिपीलिकाओं द्वारा निर्मित कक्षों को हम अपनी धारणा के अनुसार रेखागणितीय आकारों में नहीं पा सकते किन्तु उन्हें हमारे चौकोर से बने गृहों या कक्षों पर सम्मति देनी पड़े तो कदाचित वे हमारे गृहों के ऐसे विशेष आकार के कोई युक्तिसंगत कारण स्वीकार न कर सकें। किन्तु पिपीलिकाओं के गृह में हम जब कहीं गहरे शीत कक्ष और कहीं अपेक्षाकृत उष्ण शिशुशाला आदि की व्यवस्था देखते हैं तो आश्चर्य होता है। ऋतु-परिवर्तन के कारण मनुष्य मैदानी भाग से पार्वत्य भागों में जाने का जो उपक्रम करता है, उसका अनुकरण पिपीलिकाएँ अपने बिल में ही कर रखती है। शिशुओं (इल्लियों), अंडों आदि को ऋतु-विषमता से बचाने के लिये बिल के अपेक्षाकृत उष्ण या शीत भाग में रखने के लिए व्यवस्था रखी जाती है। खाद्य पदार्थ के लिये भी उपयुक्त वातावरण का स्थल बिल के अन्दर पाया जा सकता है। कितनी ही पिपीलिका-जातियाँ अपने आहार प्राप्ति क्षेत्र के जंगल तक जाने या जन्य सजातीय उपनिवेशों तक पहुँचाने के लिए मार्ग बनाती हैं। इसमें सबसे अधिक कौतूहल की बात यह है कि कुछ पिपीलिकाएँ इन मार्गों के मध्य अपने क्लान्त श्रमिकों के लिये विश्राम-गृह का निर्माण किए होती हैं। पिपीलिका मनुष्य की अपेक्षा इतनी अधिक बलिष्ठ होती है कि अपने आकार की अपेक्षा बहुत अधिक भार का वहन कर सकती है। एक पिपीलिका द्वारा भार वहन कर सकने की शक्ति का नमूना हम कल्पना में भी नहीं ला सकते। मान लीजिये हमें बारह-चौदह मन का कोई लट्ठा, गट्ठर या सिल्ली साठ मंजिले कोठे के ऊपर पहुँचानी है। एक पिपीलिका तुलनात्मक रूप में इतना भारी श्रम-कार्य करती है। अतएव

हमें यह सहज अनुभव हो सकता है कि वे कितनी क्लान्त हो सकती हैं। अतएव थके-माँदों या कार्य कर सकने में मार्ग में अस-

क्लान्त श्रमिकों के लिए पिपीलिकाएँ मार्ग में विश्रामागार बनाती हैं।
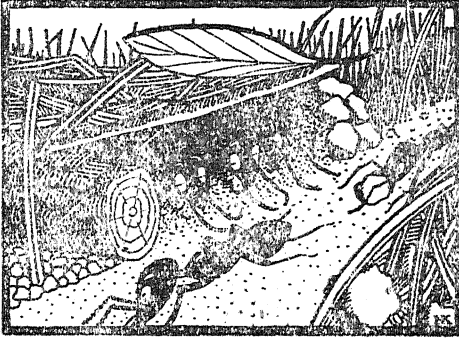
मर्थ हो जाने वाले सदस्यों के लिए विश्रामगृह कितना सुविधा-जनक हो सकता है।

पिपीलिकाएँ जो मार्ग बनाती हैं वे कभी-कभी इतना चौड़ा हो सकता है कि उस पर मनुष्य चल सके। उसकी बराबर मरम्मत भी होती रहती है। कहीं घासपात उग आने पर तुरन्त उखाड़ फेंकी जाती है। धूल भी कूट कर बैठा दी जाती है। पाँच फुट के सोते के नीचे सुरंग बनाकर मार्ग बनाने के भी उदाहरण हैं। यही नहीं, वे पुल भी बना लेती हैं। नाला सुखा कर मार्ग बना लेने के लिये उसमें मिट्टी फेंकते जाना एक युक्ति हो सकती है। टिटिहरी ने तो समुद्र सुखाने का प्रयास पौराणिक कथाओं में ही किया था, किन्तु पिपीलिका तो हमारे चर्मचक्षु के सामने गढ्ढे को मिट्टी फेंक-फेंककर भर देते पाई जाती है। एक वैज्ञानिक ने एक विचित्र

प्रयोग किया। एक पानी भरे ग्लास के मध्य एक द्वीप सा बनाकर उसने उस द्वीप पर कुछ पिपीलिका-शिशुओं को रखा। उनकी संबंधी पिपीलिकाएँ छोरों पर किंकर्तव्यविमूढ़ बैठी नहीं रहीं बल्कि उन्होंने रेत ला-ला कर ग्लास को भरना प्रारम्भ किया। अन्त में ग्लास भर जाने पर उसके ऊपरी तल पर से मध्य में पहुँचकर अपने शिशुओं का उद्धार कर सकीं तथा उन्हें अपने गृह में उठा ले गई। खर, पात, प्यूपा के खाली खोल आदि को फेंक-फेंक कर पिपीलिकाएँ जलमय भाग को इसी प्रकार भर लेती हैं जैसे हम लोग नगरों में निम्नतलीय भूमि को नगर के कूड़े फेंकवा कर भरने की व्यवस्था करते हैं।

विचित्र पिपीलिका-गृह

अधिकांश पिपीलिकाओं को अपना गृह-निर्माण कौशल भूमि के अन्दर विचित्र बिलें बना कर प्रकट करते देखा जाता है। परन्तु ऐसी भी पिपीलिकाएँ हैं जो उसके लिए अपना श्रम नष्ट न कर कहीं बना-बनाया सुन्दर स्थान ही ढूँढ़ लेती हैं। इनके बने-बनाये घरों की कथा और भी विचित्र है। ये घर पेड़-पौधों के खोखले तनों, शाखाओं, पत्तियों या पत्तियों के अन्दर गाँठ से बने भागों (गाल या पत्रकंदों) या काँटों के छिद्र रूप में होते हैं। बलूत या फनाट (ओक) वृक्षों के नीचे अधिकतर हरी गेंद-से पत्रकन्द देखे जा सकते हैं। वे भीतर खोखले होते हैं। इनके अन्दर केन्द्र-स्थल में बीज सी कोई वस्तु दिखाई पड़ सकती है जो कठोर भूरे रंग के वल्क या प्रकवच के अन्दर होती है। यदि उसे खोलकर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि वे बीज नहीं हैं। बल्कि एक श्वेत क्षुद्र कीट शिशु के क्रोड़स्थल हैं जिनकी बड़ी, कलौंछ आँखें दिखाई पड़ती रह सकती हैं। यहाँ पर हमें उन कीट शिशुओं की आँखों की विशदता का वर्णन नहीं करना है बल्कि यह बताना है कि इसी कीट का क्रोड़स्थल बना हुआ यह पत्रकन्दीय कोटर भविष्य में पिपीलका का बना बनाया घर हो सकता है। बलूत या फनाट वृक्ष अपनी हरी पत्ती के कन्द (गाल) रूप में पत्रकन्दीय मक्षिका (गाल फ्लाई) द्वारा दिए हुए अंडों को ढक रखने के लिए गृह बनाए होता है। जन्म धारण कर और पुष्ट होकर उसके

उड़ जाने पर इस खाली स्थान को एक पिपीलका ढूँढ़ लेती है।

अपने पत्र के कोमल क्रोड़ में पत्रकन्दीय मक्षिका (गाल फ्लाई) को जन्म धारण करने के लिए आश्रय देकर बलूत जैसी उदारता दिखाता है उसी उदारवृत्ति की पुनरावृत्ति पिपीलिका को प्रश्रय देकर भी करता है। जब पिपीलिका इसके भूरे रंग के सूखे पत्रकन्द में पहुँचती है तो उसके पार्श्व में पिपीलिका काष्ठशिल्पी एक ऐसा छोटा छेद बना लेते हैं जिसमें केवल पिपीलिका के ही आने-जाने भर का मार्ग हो। इतना ही नहीं, उस पर द्वार का भी विचित्र प्रबन्ध किया जाता है जिसका वर्णन विस्मयजनक है।

बलूत या फनाट (बंज या बनी भी कहते हैं) के पत्रकन्द में निवास करने वाली पिपीलिका जाति को द्वार की विचित्रता के कारण ही जीवित-द्वार पिपीलिका नाम दिया जा सकता है। इस जाति के सैनिकों के माथे चपटे होते हैं। वस्तुतः वे पूर्णतः वर्गाकार होते हैं। पत्रकन्द के खोखले रूप बने-बनाए गृह की रक्षा के लिए द्वार पर एक ऐसे विचित्र सिरों का सैनिक नियुक्त किया जाता है। जब किसी सजातीय पिपीलिका को इस गृह के अन्दर जाना या भीतर से बाहर आना होता है तो उसे किवाड़ खोलने के लिए कुण्डी हटाने या ताला खोलने की आवश्यकता नहीं होती। द्वार पर तो जीवित पिपीलिका का सिर ही अवरोध रूप में अटकाया होता है। उस सैनिक प्रहरी पिपीलिका को केवल इंगित भर करना होता है। आगंतुक सजातीय पिपीलिका बाहर प्रतीक्षा कर अपने मुख पर की संवेदनशील मूछ को हिलाकर सैनिक प्रहरी के माथे से स्पर्श कराती है जिससे तुरन्त ही प्रहरी के हटने से द्वार खुल जाता है। भीतर से बाहर आने वाली पिपीलिका उसके पैर में मुख चुभाती है। तब भी द्वार खुल जाता है।

सैनिक प्रहरी पिपीलिका का भी कैसा विचित्र जीवन होता है। सतत माथे पर सजातीय पिपीलिकाओं के संवेदनशील मूछ का स्पर्श तथा पैर में मुख चुभोए जाने का ही सतत अनुभव करता रहना पड़ता है। किन्तु यह अपरिवर्तनीय कार्यक्रम उसे अपनी जाति रक्षा के लिए सहर्ष करना पड़ता है। कोई अन्य कीट या शत्रु इस गृह में प्रवेश नहीं पा सकता। द्वार खोलने को कौन कहे, शत्रु के सामने विद्यमान होने का अनुभव कर प्रहरी के संदंशमुख (सँड़सीनुमा जबड़े) उस सपाट जान पड़ने वाले तल या माथे से बाहर की ओर दो ओर से बढ़ पड़ते हैं और शत्रु को खा लेने का उपक्रम करते हैं। अतएव ऐसे दुर्द्धर्ष प्रहरी के सम्मुख कोई शत्रु भीतर जाने का साहस ही नहीं कर सकता।

कुछ पिपीलिकाएँ काठ की लुगदी मुख में उत्पन्न कर उससे रेशमी कागज बना लेती हैं। उसी से अपना गृह बनाती हैं। कभी-कभी सात फुट लम्बा गृह ऐसे कागज से बना होता है जिसमें मनुष्य का भी प्रवेश हो सकता है। कोई भी मनुष्य ऐसे फन्दे में पड़ने का उद्योग नहीं कर सकता क्योंकि कुछ पिपीलिकाएँ बर्रे या मधुमक्खी की तरह डंक भी मारती हैं। रेशमी कागज बनाने वाली पिपीलिका भी डंकधारी होती हैं, फिर भी उनके डंक की चोट सहन कर वैज्ञानिकों ने उनके रेशमी कागज के गृह का अवलोकन करने का प्रयत्न किया है। लाखों डंकधारी पिपीलिकाओं के डंक की मार सहन करने का साहस करना एक भारी धैर्य परीक्षा हो सकती है फिर भी खोजियों ने इसका सामना किया है।

आज मनुष्य ने कागज की लुगदी बनाकर हाथ से ही उसका निर्माण करने की विधि नहीं ज्ञात कर ली है, प्रत्युत यंत्रों से लुगदी बनाकर भारी मात्रा में कागजों को बना सकना सम्भव हो सका है। परन्तु मनुष्य से बहुत पहले किस प्रकार चींटी-चींटे

सरीखे क्षुद्र जन्तुओं ने कागज बना लेने की युक्ति ज्ञात कर ली यह बड़े आश्चर्य की ही बात है। अन्तर केवल इतना ही है कि हम बड़े यन्त्रों में काठ गला कर पल्प या लुगदी बनाकर कागज बनाते हैं, परन्तु पिपीलिकाएँ मुख में ही काठ चबा कर लुगदी बना कर कागज का निर्माण करती हैं।

दक्षिण अमेरिका में एक पिपीलिका तुरही (ट्रंपेट) वृक्षीय कही जाती है। यह तुरही वृक्ष पिपीलिका-पोषक होता है। इसमें खोखला तना बड़े लम्बे बरामदे सा होता है। इसकी शाखाएँ भी छोटे-छोटे कक्षों युक्त होती हैं जिनका सम्बन्ध तने के लम्बे कोटर या खोखले से होता है। वे कक्ष एक दूसरे से केवल पतली दीवालों द्वारा ही पृथक होते हैं। पत्तियों के डंठल भी खोखले होते हैं। इतना ही नहीं, उनमें क्षुद्र गद्दियाँ होती हैं जिन पर शर्करा फल उगे होते हैं। ये उस वनस्पति के गूदे के मधुर खण्ड होते हैं जिन्हें पिपीलिकाएँ खाकर जीवन चलाती हैं। इस पर भी तुर्रा यह कि जैसे-जैसे पिपीलिकाएँ उन गूदे खण्डों या शर्करा फलों को खाती जाती हैं, वे पुनः बढ़ आते रहते हैं। यह सब सुनने में इन्द्रजाल ही ज्ञात हो सकता है परन्तु यह तो प्रकृति की प्रचुर उदारता एवं विचित्रता का एक प्रत्यक्ष उदाहरण ही है। इन पिपीलिकाओं को पिपीलिका जगत का मर्कत (बन्दर) कह सकते हैं।

तुरही वृक्ष पर निवासिनी इस वृक्षपिपीलिका की जीवन-कथा का हम कुछ अनुमान कर सकते हैं। जब नव गर्भान्वित रानी नया उपनिवेश स्थापित करने चलती है तो उसे नाना प्रकार की द्विविधा-पूर्ण योजनाएँ नहीं सोचनी पड़तीं। कहीं भूमि में छिपने का स्थान नहीं ढूँढ़ना पड़ता। भूमि खोद कर बिल बनाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसका तो सारा प्रबन्ध तुरही वृक्ष के तनों,

शाखाओं आदि के अंतर्गत कोटरों तथा प्रकोष्ठों में पहले से ही तैयार रहता है। किसी तुरही वृक्ष पर एक बार बैठ जाने पर उसकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं, सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। वह इसके तने में एक छोटा सा छिद्र बनाकर भीतर के खोखले भाग में प्रविष्ट हो जाती है। हरी दीवालों और छतों युक्त सुन्दर आवास उसे सहज प्राप्त हो जाता है। एक कक्ष का दूसरे कक्ष से विभाजन केवल पतली कागजी दीवाल से ही होता है जिसे उसके संदंशमुख सहज ही छेद सकते हैं। पार्श्व में ही शर्करा-फल की भी व्यवस्था होती है। गद्दों का आसन और शर्करामय आहार की निःशुल्क व्यवस्था उसके नए उपनिवेश के स्थापित करने की प्रबल भूमिका रूप होते हैं। केवल इतना ही नहीं होता। ऐसे सुन्दर भोजन और निवास के स्थान की रक्षा का भार भी वह वृक्ष अपने ही ऊपर लेता है। रानी को छेद कर भीतर जाने का ज्यों ही अवसर होता है उसके बाद वृक्ष अपनी बाह्य त्वचा (खाल) के क्षत भाग की स्वतः पूर्ति करने लगता है और वह बन्द हो जाता है। रानी पिपीलिका भीतर ही सानन्द पड़ी रहती है। उसके निकट अब किसी शत्रु से जाने का मार्ग नहीं होता।

इतने आनन्द के स्थान में निर्द्वन्द रहकर, सहज ही रक्षा, निवास और भोजन का व्यवस्था अपने आश्रयदाता वृक्ष से पाकर रानी पिपीलिका का कार्य अब केवल अंडे देते जाना होता है। इतना उदार वृक्ष कहीं अन्यत्र ढूढ़ने से भी कदाचित प्राप्त न हो। ऐसा औढर दानी कोई अन्य वृक्ष कदाचित ही मिल सके।

एक दूसरा वृक्ष भी उष्ण कटिबन्धों में पाया जाता है जो पिपीलिकाओं को आश्रय देने के लिए ही बना ज्ञात होता है। उसमें मटर की भाँति फूल उगते हैं। इस वृक्ष के तने पर खोखले काँटों के जोड़े निकले होते हैं। उन्हीं काँटों के कोटर में एक

पिपीलिका अपना निवास बनाती है। उनके इस गृह का द्वार काँटे की ऊपरी नोक पर होता है। ऐसे वृक्षों में रहने वाली पिपीलिकाओं की इतनी भारी संख्या होती है कि वृक्ष के हिलाने पर वे भूमि पर बरस सी पड़ती हैं। उसकी पत्तियाँ गुलाब की पत्तियों की तरह होती हैं। एक डंठल के दोनों ओर छोटी-छोटी पत्तियों की शृङ्खला होती है। ऐसे पल्लव के मूल भाग में यह वनस्पति एक मधु प्याली की व्यवस्था रखता है। इसे पीने के लिए पिपीलिकाएँ सदा ही लालायित रहती हैं।

यह मधुदाता वृक्ष केवल मधु दान को ही यथेष्ट उदार कार्य नहीं समझता, कदाचित इसी कारण मधु प्याली के पास ही एक सुनहला सेब भी उत्पन्न करता है। जब वह सेब पक जाता है तो पिपीलिकाएँ उसके नन्हें वृन्त (डंठल) को काट लेती है जिससे वह टहनी में लगा होता है और उसे अपने गृह में आहार के लिए ढो ले जाती हैं। दिन भर पिपीलिकाएँ अपनी वाटिकाओं में यह निरीक्षण करने के लिये भ्रमण करती फिरती हैं कि वे फल पक पाए या नहीं। किन्तु इस कार्य के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य ही उन्हें नहीं करना होता।

एक पिपीलिका अपना घोंसला वृक्ष की शाखा से आबद्ध कर लटकता हुआ बनाती है। वे घोंसले मिट्टी के कण उनके विचित्र थूक से सन कर बने होते हैं। जब ये घोंसले नये रहते हैं तो एक स्पंज की तरह ही होते हैं मानो स्नानागार से किसी ने ऊपर फेंक दिया हो और वह डाल से लटक पड़ा हो किन्तु इस रूप में शीघ्र ही अन्तर पड़ने लगता है। पिपीलिका विभिन्न प्रकार के बीज वहाँ पहुँचाती है। उधर उसके मुख से आर्द्र बनी मिट्टी उन्हें उगाने लगती है। कुछ समय में वह स्पंज भूरे स्पंज की आकृति के स्थान पर खिले फूल का गोला बनने लगती है। यह पिपीलिका की

आकाश वाटिका होती है। पिपीलिकाएँ बीज लाती ही जाती हैं। अतएव उनसे उग कर फूल इस गोले को बड़ा करने लगते हैं। धीरे-धीरे इसका वृहद आकार हो जाता है जिसके अन्दर पिपीलिका निष्कंटक जीवन व्यतीत कर सकती है। उसे अब वर्षा, आँधी, पानी आदि का तनिक भी भय नहीं रह जाता। यह आकाश-पुष्प-जनक पिपीलिका एज़टेका कहलाती है।

एक पिपीलिका पत्रगृही होती है। रक्तपीत वर्ण वृत्तीय पिपीलिका भी इसे कह सकते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में इसे मटा या माटा नाम से भी पुकारते हैं। इसका जैसा विचित्र गृह होता है उतनी ही विचित्र यह पिपीलिका भी होती है। इसके श्रमिक लालपन या हरेपन रंग के होते हैं। परन्तु रानी चमकीले गहरे हरे रंग की होती है। नर का रंग चिकना काला होता है। उसके पंख इन्द्र-धनुष के रंग के होते हैं।

पत्रगृही पिपीलिका अपने गृह या घोंसले का निर्माण पत्तों के किनारे निकट कर उन्हें परस्पर सी कर बनाती है। इनकी सिलाई सूक्ष्मतम रेशम से होती है। विज्ञान-शोधकों को पहले यह बड़े ही आश्चर्य की बात ज्ञात होती थी कि इन्हें यह रेशमी धागा प्राप्त कहाँ से होता है। किसी भी पौढ़ पिपीलिका के शरीर में कहीं रेशमी धागा उत्पन्न करने का साधन नहीं पाया जा सकता। फिर भी मकड़ियों सा तन्तु इन्हें कैसे मिल जाता है। पत्तों को आबद्ध रखने वाला रेशमी धागा निस्संदेह ही उनके घोंसले में विद्यमान देखा जाता है। वे पत्तियों के किनारों में इस तरह पिरोये होते मानो बखिया किया हो।

अंत में किसी प्रकार एक गहन पर्यवेक्षक की जागरूक सूक्ष्म-दृष्टि इस सूत्र के स्रोत पर पड़ ही गई। एक दिन उसने पत्ती में एक क्षत भाग की मरम्मत करती हुई पिपीलिकाओं को देख लिया।

ज्ञत भाग बड़ा था। फटने से बड़ा छेद हो गया था। उस पर्यवेक्षक ने देखा कि फटे भाग के किनारों पर बगल-बगल में पिपीलिकाएँ श्रेणीबद्ध बैठ गई हैं। फिर वे लपक कर फटे भाग के दूसरे किनारे को अपने सँड़सीनुमा जबड़े (संदंशमुख) में पकड़ कर दोनों किनारे धीरे-धीरे निकट करने लगीं। वे सावधानी तथा दृढ़ता से उन छोरों को सटाने लगीं जिससे पत्ती के अन्दर छिद्र या फटा भाग न रह जाय। दोनों किनारों को निकट पहुँचाने में उन्हें एक घन्टा लग गया। साथ ही अन्य पिपीलिकाएँ दौड़-दौड़ कर उन किनारों को काट-छाँट कर बराबर करने में संलग्न रहीं। जब पत्तियाँ बिलकुल निकट और बराबर किनारों की हो गईं तो रफ्फू करनेवाले कारीगर बुलाए गये। कारीगर क्या थे, बिना सुई या तागा लिए पिपीलिकाएँ ही थीं। केवल एक-एक पिपीलिका-शिशु उनके सन्दंश-मुख में था। यही उनके रफ्फू करने का एकमात्र उपकरण था। इस पिपीलिका-शिशु या इल्ली का जन्म अंडे से होता है। बाद में वह अपने शरीर के ऊपर सूत्र या खोल चढ़ा कर प्यूपा नाम से पुकारा जाता है और दीर्घनिद्रा के पश्चात् काया पलट कर पूर्ण पिपीलिका बन जाता है।

अतएव हम समझ सकते हैं कि इल्ली का रूप प्रौढ़ पिपीलिका से भिन्न होता है। उनके अङ्ग विभिन्न या विचित्र हो सकते हैं। उनके मुख में सूत कात सकने का अवयव होता है जिससे सूत निकल कर उसके शरीर का अल्पकालीन आवेष्ठन बना सकता है। रफ्फूगर पिपीलिकाएँ इस तरह की इल्ली को क्षुद्र कोमल मुख में दबा कर पकड़े रहती हैं। उनके दबाने पर इल्ली इसी प्रकार सूत बाहर निकाल देती हैं जैसे हम किसी अर्द्धद्रव मंजन या गाढ़े लेप युक्त पतले पत्तर की बनी चौड़ी नली को दबाने पर उस वस्तु की कुछ मात्रा बाहर निकाल लेते हैं। पिपीलिका की इल्ली

से निकला पदार्थ एक चिपकन अर्द्धद्रव पदार्थ होता है। परन्तु सूखने पर वही सूत्र का रूप धारण कर लेता है। यह इल्ली ही इन कारीगरों की सुई हुई जिसमें से भीतर से ही तागा निकालने की भी व्यवस्था होती है। ऐसे सुई, तागे से कारीगर पिपीलिकाएँ पत्ते के किनारों को सीने लगती हैं। वे पहले इल्ली का मुख नीचे दबा कर पहले किनारे पर रखती हैं, फिर दूसरे किनारे पर ले जाकर रखती हैं। इल्ली के मुख से निकले द्रव्य के सूख जाने तक उसका मुख किसी किनारे पर दबाये ही रखती हैं। करघे की ढरकी के समान इल्ली को आगे-पीछे ले-ले जाकर वे पत्ते के किनारों की सिलाई भलो भाँति कर लेती हैं। धीरे-धीरे पूरी लम्बाई में ऐसी सिलाई हो जाती है। यदि एक इल्ली की सूत्रनिर्माण शक्ति समाप्त हो जाती है तो दूसरी कारीगर पिपीलिका अन्य इल्ली को लेकर वहाँ पहुँच जाती है और सिलाई का कार्य जारी रखती है। वे इल्ली को जैसे-जैसे अधिक दबाती जाती हैं, वैसे-वैसे वह सूत्र का पदार्थ बाहर निकालती जाती है। उपनिवेश की रक्षा के लिए अपने ही बन्धुओं का शैशवकाल में भी ऐसा नृशंस अन्त एक कर्तव्य का ही कठोर भाग कहा जा सकता है। उदर की पूर्ण राशि बरबस मुख से बाहर निकलवाने के लिए उसे दबा-दबा कर इल्ली की हत्या कर भी कारीगर पिपीलिका अंतर्वृत्ति के कारण ही इस जाति-रक्षा कार्य में लिप्त होती है।

कभी-कभी पत्ती के कटे खंड इतने दूर होते हैं कि पिपीलिकाओं की एक पंक्ति उनके किनारे निकट ला सकने में समर्थ नहीं होती। अतएव उनकी सहायता के लिए अन्य पिपीलिकाएँ आती हैं। वे इन पिपीलिकाओं की कमर पीछे से पकड़ कर खींचती हैं। कबड्डी के खेल में किसी एकाकी बालक को विरोधी दल के सम्मुख से खींच लाने के लिए अन्य बालक उसको कमर या हाथ, पैर से पकड़

कर इसी प्रकार सहायता पहुँचाते हैं। यदि खिंचाव में पत्ती के दूसरे किनारे को निकट लाने की अपेक्षा पीछे से सहायता पहुँचाने के लिए खीचने वालों का बल कमर पर ही अधिक पड़े तो इस बेचारी पिपीलिका का शरीर ही दो टूक हो जाय। किसी एक पिपीलिका की कमर पकड़ कर एक भारी दल का पीछे से खिंचाव करना कितना भयानक हो सकता है। परन्तु घोंसले की किसी प्रकार रक्षा करने के लिए कितना भी त्याग करना आवश्यक हो, किया जाना ही उनका सामाजिक सिद्धान्त ज्ञात होता है। यदि ऐसा करने पर भी पत्ती का किनारा ठीक स्थिति में नहीं आ सकता तो उसे पकड़ कर लटक जाती हैं और एक दूसरे से लटकती जाकर रस्सी सी बन जाती हैं। ऊपर और नीचे यह जीवित रूप का सेतु बना होता है। उन पर अन्य पिपीलिकाएँ आ-जा सकती हैं।

एक वैज्ञानिक ने एक पौधे के सीधा करने का दृश्य वर्णन किया है। पिपीलिकाएँ एक दूसरे की कमर पकड़ अपनी शृंखला भूमि पर एक पौधे तक पहुँचाना चाहती थीं जो वायु द्वारा बराबर हट जाता था। पिपीलिकाओं की इस लटकी पंक्ति को अपना पैर ठीक स्थान पर जमा सकने में असफल देख कर चतुर पिपीलिका उस निचले पौधे की एक पत्ती पर नीचे से जा चढ़ी जो ऊपर की पिपीलिका-शृंखला के पकड़ लेने का लक्ष्य या स्थल था। अपने दल की ऊपरी पंक्ति के ठीक नीचे ही पत्ती पर चढ़ कर उसमें अपना शरीर पैर पर खड़ा कर ऊपर किया। उधर नीचे पत्ती में उसके पैर गड़े रहे। ऊपर की पिपीलिका-शृंखला वायु के झकोरे से एक बार जहाँ पास आई कि उसने मुख से उसे पकड़ लिया। बस उनका उद्देश्य पूरा हो गया।

पिपीलिका की गृह-व्यवस्था

उदर की ज्वाला किस प्राणी को पीड़ित नहीं करती। संसार के जितने कार्य-कलाप हैं वे एक न एक प्रकार भूख मिटाने के लिए सभी प्राणियों द्वारा सम्पादित होते हैं। यदि भूख की पीड़ा न हो तो किसी को हाथ-पैर हिलाने की कोई आवश्यकता न रह जाय। जब उदर के रिक्त होने पर सहस्रों, लाखों कोषों की आर्त्त पुकार मस्तिष्क तक पहुँचती है तो प्राणी क्लेश का अनुभव करता है। इसे ही भूख कहते हैं। अपनी इस पीड़ा को दूर करने के लिये वह कोई भी कष्टसाध्य कार्य कर डालने का साहस कर सकता है। रहीम ने तो उदर को उलाहना सा देकर यह कहा है कि वह पीठ क्यों नहीं हुआ जिससे भूख का प्रश्न ही न रहता और कोई भगीरथ प्रयत्न या जघन्य कार्य भी उसके निराकरण करने के लिए न करना पड़ता। अन्यत्र भी कहा है :—

त्यजेत् क्षुधार्त्ता महिला स्वपुत्रम्।
खादेत् क्षुदार्त्ता भुजगी स्वमण्डम्॥

बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्।
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति॥

अर्थात भूख से पीड़ित माता पुत्र का भी त्याग कर देती है। भूखी सर्पिणी अपने ही अंडे खा जाती है। भूखा कौन सा जघन्य कार्य नहीं कर सकता! भूख का मारा व्यक्ति निर्दय होता है।

इस कथन का तात्पर्य यही है कि भूख-निवारण के लिए कितने

ही तरह के कार्य-कलाप करने पड़ते हैं। पिपीलिकाएँ भी अपनी भूख मिटाने के लिए पता नहीं क्या-क्या कार्य कर दिखाती हैं। कहीं जङ्गल में मृत-कीट भूमि पर पड़ा होने पर उसे मलिन वातावरण न बनाने देकर वे उसे भक्षण कर अपनी उदरपूर्ति भी करती हैं। जीते कीटों को भी खाकर उनकी वृद्धि के अवरोध में कुछ सहायता पहुँचाती हैं जिससे कभी ऐसा न हो जाय कि अत्यधिक वृद्धि हो जाने से वह कीट ही सारे संसार को छाप ले।

पिपीलिका का व्यक्तिगत या निजी उदर पृथक वस्तु है तथा संघीय उदर अन्य वस्तु है। निजी उदर से संघीय उदर का संबंध अवश्य होता है परन्तु बहुत ही अधिक भूख की ताड़ना होने पर ही संघीय उदर में रक्षित खाद्य-रस या मधु का उपयोग वे अपने लिए करती हैं। अन्यथा वह सारी जाति की ही थाती होती है। उसका कुछ उपयोग करने पर वे अवश्य ही घोर लज्जा का अनुभव कर सकती हैं। ऐसा कर्तव्य-ज्ञान पिपीलिकाओं की विशेषता ज्ञात होती है। हमारे बच्चे तो माता की पीठ फिरते ही कहीं डब्बे या किसी बर्तन में रक्खे मिष्टान्न या अन्य सुस्वादु पदार्थ को चुपके से चोरी कर खाने का प्रयास करते हैं। परन्तु पिपीलिका सा क्षुद्र जन्तु ऐसा आदर्श व्यवहार करता है।

यह तो साधारण वृत्ति की बात हुई परन्तु गृह-प्रबन्ध की चर्चा आने पर हमारा ध्यान गृह-कार्य में प्रयुक्त सेवकों पर सहज ही जाता है। उसकी झाँकी हमें मिलती ही है कि प्रारम्भ में नव गर्भान्वित मादा या रानी पिपीलिका ही सब कार्य स्वयं सम्पन्न कर लेती है किन्तु सन्तान के प्रौढ़ होने पर वह निश्चिन्त हो जाती है। सारा गृह-कार्य सन्तानें ही सँभाल लेती हैं। सन्तानों की बात उठने पर हमें यह बात तुरन्त ही ध्यान में आती है कि पिपीलिका-समाज में कैसा विचित्र विधान है कि सेवकों का एक बहुसंख्यक दल जन्म

से ही सेवा करने के उद्देश्य से उत्पन्न होता है। यह श्रमिक, सैनिक आदि रूप का नपुंसक दल होता है। इनमें इन्द्रिय-लिप्सा की वृत्ति कभी नहीं जग सकती। वे सन्तानोत्पादन कार्य कर सकने में अक्षम या बाँझ मादाएं ही होती हैं। उन्हें ही हम बिल या घोंसले के बाहर दिन-रात कार्य संलग्न रहते देखते हैं। सारे उपनिवेश की रक्षा तथा उदरपूर्ति भार उन पर होता है। अण्डों, इल्लियों आदि का पालन-पोषण भी उन्हीं को करना पड़ता है किन्तु आजीवन सेवा-व्रती रहने पर भी उन्हें कभी किसी भी प्रकार का पुरस्कार या सम्मान प्राप्त नहीं होता। फिर भी वे सदा कर्तव्य-संलग्न रहती ही हैं।

नपुंसक श्रमिकों या नर-मादा सन्तानों की श्रेणी में से किसी श्रेणी विशेष की सन्तान उत्पन्न करना रानी की इच्छा या नियंत्रण पर निर्भर होता है। मनोवांछित सन्तान उत्पन्न करने की ऐसी शक्ति कदाचित ही कहीं अन्यत्र जन्तु-जगत में देखने को मिल सके। अपनी नर-मादा सन्तानों को प्रौढ़ देखकर जाति-प्रसार के उद्देश्य से बिल के बाहर भेजने की व्यवस्था भी रानी के निर्देश से होता होगा। सुहाग-उड़ान के अवसर पर ये बिल के बाहर निकल कर जहाँ अन्यत्र सजातीय नूतन उपनिवेश के कारण होते हैं, वहाँ पुराने उपनिवेश में सन्तानवृद्धि के लिए स्थान भी प्राप्त हो जाता है।

श्रमिकों के कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय उतना ही थोड़ा है। गृह-निर्माण से लेकर प्रौढ़ नर-मादाओं की विदाई तक के कार्य में उन्हीं का हाथ रहता है। वृहद् सशस्त्र अङ्गों युक्त सैनिक भी उन्हीं की तरह की श्रेणी में होते हैं जो अन्य जातीय पिपीलिकाओं या कीटों से युद्ध कर सकते हैं।

यदि अपने उदर की पूर्ति न कर दूसरों के उदर की चिन्ता

करना ही महान जीवन हो तो पिपीलिकाओं को इस दृष्टि से एक बड़ा ही महान पद प्राप्त हो सकता है। उन्हें उदारता का अवतार सा ही माना जा सकता है।

श्रमिकों में स्वार्थ का नाम तक नहीं होता। रानी पिपीलिका तो एक बार सन्तान को प्रौढ़ होने का अवसर देकर स्वयं बिल के अँधेरे कोने में हट जाती है। उपनिवेश के सारे कार्यों का भार श्रमिक पिपीलिकाएँ ही सहर्ष अपने ऊपर ले लेती हैं, ज्यों ही किसी

पिपीलिकाएँ अपने से तिगुने-चौगुने बड़े कीड़ों को भी उठा ले जाती हैं।

शिशु श्रमिक पिपीलिका के शरीराच्छादक प्रकवच या शरीर के ऊपर कड़ी खोल की व्यवस्था हो जाती है, वह बिल के बाहर चारा ढूँढ़ने निकलने लगती है। उन्हीं को हम बिलों के बाहर दूर-दूर तक निरंतर भटकते फिरते देखते हैं। वे सदा अपने मुख के सम्मुख के संवेदनशील मूँछ को हिलाते-डुलाते रहकर खाद्य द्रव्य की गन्ध लेती रहती हैं। वे इतनी अधिक परिश्रमी होती हैं कि अपने शरीर

से तिगुने आकार के कीटों का शव अपने घोंसले या बिल में घसीट ले जाती है। यह तो ऐसा ही कहा जा सकता है मानो कोई मानवीय राक्षस मृत वृषभ (बैल) को दाँतों में दबाकर वृक्ष की ऊँची चोटी पर चढ़ सकता हो ।

पिपीलिकाओं के आहार की प्रिय वस्तुएँ शर्करा, वसा (चर्बी) मांस, दाने और फफूँद (कवक) हैं। फफूँद या कुकुरमुत्ते की तो वे खेती ही करती हैं। मांस और चर्बी अन्य कीटों को मारकर या पहले से ही मृत कीट को खाकर प्राप्त करती हैं। यदि कहीं पर कोई मांस पिंड युक्त अस्थिखंड फेंक दिया जाय तो उस पर तुरन्त ही पिपीलिकाएँ आ लगती हैं। कुछ ही देर में अस्थिखंड पूर्ण स्वच्छ सा हो जाता है। यह उनके मास चाट लेने की क्रिया का ही फल है। उनको कुछ कृत्यों के कारण हम घृणा का पात्र भी मान सकते हैं। वे अन्य जातियों की चीटियाँ तथा चींटों के नवजात शिशु तथा इल्लियों को द्रोहवश खा जाती हैं। कभी-कभी तो वे अन्यत्र उपनिवेश बनाकर रहती हुई सजातीय जाति की पिपीलिकाओं को भी खा लेती हैं।

अनेक पिपीलिकाओं का आहार घास के बीज होते हैं। इन्हें ये अपनी जीभ से विद्ध कर बीज के अन्दर विद्यमान श्वेत सार (माँड़ी), तैल तथा शर्करा आदि को चाट डालती हैं। कुछ पिपीलिकाएँ फलों के सुस्वादु रसों, बलूत या फनाट (ओक) के पत्रकंदों (गाल), फूलों की प्याली के पेंदे के मधु या अपनी क्षुद्रकाय गो (गाय) के दूध को आहार बनाती हैं। फफूँद खाकर जीवित रहने वाली तथा बिल के अन्दर उसकी खेती करने वाली पिपीलिकाएँ भी होती हैं जिनकी पृथक-पृथक स्वतंत्र कथाएँ ही हैं। यहाँ केवल उनके आहार की विभिन्नता का उल्लेख किया गया है।

पिपीलिकाएँ अपना कोई आहार चूल्हे पर पकाती तो नहीं,

परन्तु उसकी रक्षा तथा संचय की उत्तम व्यवस्था रखनी पड़ती है। दानों या भोज्य पदार्थ के किनकों का भण्डार रखने का पृथक कक्ष बना होता है। अपने धेनुकीटों को रखने के लिए गोशाला भी बनाती हैं। शिकारी पिपीलिकाएँ भूमि के अन्दर सुरङ्ग भी बनाती हैं जिनके अन्दर सुरक्षित स्थान समझने के धोखे में पहुँचे कीट का वे आखेट करती हैं।

कीटों के आखेट के अतिरिक्त पिपीलिकाओं द्वारा आहार प्राप्त करने के साधनों में एक विशेष उल्लेखनीय है। भारत का बड़ा चींटा एक तितली के शिशु से मैत्री सा करता है। नीली तितली के अण्डे से जब इल्ली उत्पन्न होती है उसकी पीठ पर बारहवीं सिकुड़न पर एक मधु-संचयन प्याली होती है। जब पिपीलिका अपनी संवेदनशील मूँछ से उस इल्ली को गुदगुदाती है तो इल्ली अपनी मधुप्याली के ऊपरी छोर तक भरे हुए मधु-भण्डार को कुछ बाहर उँडेल देती हैं। पिपीलिका उस मधु का आनंदपूर्वक रसास्वादन कर सकती है। इस प्रत्युपकार के लिये पिपीलिका को उस इल्ली की सहायता का विशेष ध्यान रखते पाया जाता है। दोनों के परस्पर लाभान्वित होने का अवसर उनकी अन्तर्बुद्धि के कारण होता होगा।

नीली तितली की इल्ली मधुप्याली का मधु पिपीलिका के लिए क्यों छलका देती है, इसका कुछ कारण नहीं ज्ञात किया जा सकता है। हो सकता है कि गुदगुदी से वह अट्टहास कर बैठती हो जिससे मधु बाहर छलक पड़ता है। कुछ भी हो, उस मधु को पिपीलिका बड़ी रुचि से ग्रहण करने को इच्छुक रहती हैं। यह इल्ली बेर के जिस पेड़ पर रहती है उसी पेड़ की जड़ में यह पिपीलिका अपने बिल बनाती है।

जब नीली तितली की इल्ली का शरीर के ऊपर कोया बुनकर आवेष्ठित कर दीर्घ शयन का समय आता है तो वह प्यूपा (कोया-

धारी इल्ली) की स्थिति में वह वृक्ष के ऊपरी भाग को छोड़कर तने द्वारा नीचे उतर आती है और दीर्घ शयन के लिये भूमि में गड़ जाना चाहती है। तभी कालान्तर में कायापलट कर वह तितली का रूप धारण कर सकती है। बेर की टहनियों से ज्योंही वह नीचे आने लगती है, पिपीलिकाओं में बड़ी दौड़-धूप सी मच जाती है। उन्हें किसी कार्य की भारी चिन्ता सी लग जाती है। जब कोई तितली की इल्ली नीचे उतरती मिलती है, वे तुरन्त मार्ग निर्देशकर भूमि तक लाती हैं। वे उसके प्रति बड़ी ही नम्रता का व्यवहार करती हैं। उसे पेड़ के नीचे भूमि में गड़ जाने में सहायता करती हैं। तने के चारों ओर व्यवस्थित रूप से कोयाधारी इल्लियाँ भूमि के नीचे गड्ढों में सुलाई जाती हैं।

इन कोयाधारी इल्लियों को पिपीलिकाओं की रक्षा में भूमि के अन्दर निर्दिष्ट काल तक सोने का अवसर होता है। एक सप्ताह में कोये के अन्दर से पूर्ण पंखधारी तितली विकसित होती हैं। परन्तु कोये से बाहर निकलने में भी पिपीलिकाएँ सहायता पहुँचाती हैं। पिपीलिकाएँ उनको पङ्ख फैलाने में सहायता देती हैं। अन्त में वहाँ ही आकाश में चक्कर सा लगाती रहकर अपने प्रथम जीवन-सहायकों को सहायता के लिए साधुवाद सा देकर वे आकाश में उड़ चलती हैं।

अपने गृह तथा शरीर की स्वच्छता का जो आदर्श नन्हीं पिपीलिकाएँ उपस्थित करती हैं, वह स्पृहणीय है। वे स्वच्छतम कीट का पद प्राप्त कर सकती हैं। कार्य से अवकाश मिले समय का अधिकांश वे अपना शरीर चिकनाने, मैल झाड़ने तथा बाहरी कठोर त्वचा पर पालिश करने में ही व्यतीत करती रहती हैं। उनके अगले पैरों में एक ब्रश तथा एक कंघी होती है। उन्हें अपने सँडसी-नुमा जबड़े (संदंश-हनु) से रगड़कर स्वच्छ कर लिया करती हैं।

ब्रश या कंघी में कहीं भी बाल का कोई टुकड़ा अटका नहीं रह सकता। कहीं तनिक धूल-मिट्टी भी नहीं लगी रह सकती। जहाँ रात-दिन मिट्टी के अन्दर ही उन्हें जीवनयापन करना रहता है, वहाँ ऐसी आदर्श स्वच्छता भारी प्रशंसा की बात ही है। यदि शरीर के किसी ऐसे भाग में मिट्टी चिपकी हो जहाँ उसके ब्रश या कंघे या जीभ की पहुँच नहीं हो सकती, उसे वह किसी वस्तु से अपना शरीर ही रगड़कर स्वच्छ कर सकती है। फिर सारा शरीर जीभ से चाटकर चिकनाने का प्रयास करती है।

पिपीलिका को अपना शरीर जितना स्वच्छ और चिकना रखना प्रिय है, उतनी ही स्वच्छता वह सारी ...ति में देखना चाहती है। अतएव अपना शरीर स्वच्छ कर लेने के बाद अन्य सहेलियों या पिपीलिकाओं की पूर्ण स्वच्छता करने में संलग्न हो जाती है।

पिपीलिकाओं की इतनी स्वच्छ-वृत्ति का जो नमूना हमें देखने को मिलता है, उसके विपक्ष हम कभी-कभी जैसी अस्वच्छ स्थिति में रहते हैं, उसमें कदाचित वे रह ही न सकें। वह अपने गृह का सारा कूड़ा-कचरा या अवांछित पदार्थ हटा देती है। यदि कहीं बिल में कोई ऐसा बड़ा कीट मर गया है जिसे वे हटा नहीं सकतीं तो वे उस पर ऊपर से मिट्टी ही फेंककर दबा देती हैं और मार्ग स्वच्छ कर लेती हैं। यदि कहीं कक्ष में पानी एकत्र हो जाय तो उस पर मिट्टी फेंक-फेंककर सूखा स्थान बना लेती हैं। गृह की बराबर स्वच्छता की जाती रहती है। कहीं बिल के बाहर या बिल में ही एक स्थान पर कूड़ा एकत्र करने का स्थान बना होता है। इस घूरे पर ही तिनके, दानों की भूसियाँ, कीटों के कंकाल, खोखले कोए या अन्य निरर्थक पदार्थ फेंक दिए जाते हैं। उन्हें कोई एक दिन स्वच्छता के लिए निर्धारित नहीं करना पड़ता। उनका सारा जीवन ही दीवाली सा है। सतत स्वच्छता ही उनका आदर्श वाक्य है।

पिपीलिका के पोष्य तथा परोपजीवी कीट

कामधेनु का नाम हम सुनते है। यह श्रेष्ठतम या आदर्श रूप की धेनु कल्पित की गई है परन्तु निकृष्टतम रूप की धेनु नाम से कोई यथार्थ जन्तु पुकारा जा सकता हो तो वह कीट-धेनु है। कीट तो अंततः कीट ही है, परन्तु कुछ देखने में गाय का धर्म पालन करने पर इसे यह नाम दिया जा सकता है। पिपीलिकाएँ ऐसे कीट को पोष्य बनाती हैं जिससे किसी प्रकार उन्हें दूध के तुल्य कोई मधुर रस प्राप्त होता है। इन कीट-धेनुओं की सींग पीठ पर होती है और शरीर का रंग हरा-सा होता है। इनका प्रदान किया रस-पान करने के लिए पिपीलिकाएँ इनको पोष्य बना कर रखती हैं तथा गायों की तरह इन्हें चराने के लिए जंगलों में ले जाती हैं। इनकी रखवाली करने वाली सशस्त्र चरवाहा पिपीलिकाएँ होती हैं। इन कीट-धेनुओं को एफिड या वानस्पतिक कीट भी कहते हैं। गुलाब की पंखुड़ियों में इन्हें लिपटा देखा जा सकता है। माली अपने फूलों की रक्षा के लिए हलका विष अपने पौधों पर छिड़क कर कीटों को मार डालने का उपक्रम करता है किन्तु उसे क्या ज्ञात रहता है कि क्षुद्र आकार की किसी की धेनुएँ ही वहाँ चर रही हैं और वे ही उसके पौधों की शत्रु हैं। वह अनजाने ही इन पिपीलिका-पोष्य कीट-धेनुओं का संहार करता है। इन कीट धेनुओं की स्वतंत्र ही कथा है।

पिपीलिकाओं का एक दूसरा पालतू कीट सतरंगी तितली

(काल्सिड फ़्लाई) है। इसके पंख इतने सुन्दर बहुरंगे होते हैं कि इनको अपने बिल के अँधेरे सूने स्थल में पोषित कर अपना मनोरञ्जन करने के लिए लालायित रहती हैं। इससे अधिक सुन्दर कीट कोई दूसरा कदाचित ही होता हो। पंखों में चमकीले हरे, बैंजनी, नीले, पीले और काले रंगों की छटा होती है। अतएव इससे अपने बिल की सौन्दर्य-वृद्धि करने में पिपीलिकाओं को हर्ष ही होता होगा।

बेचारी पिपीलिकाएँ अपनी सौन्दर्य-वृत्ति से इस कीट का सामीप्य स्वीकार करती हैं। अपने पोषक की सरलता के अनुरूप इस तितली में निष्कपटता नहीं होती। सुन्दर पंखों के नीचे छल-छद्म भरा होता है। मादा तितली अपने अंडे देने के लिए पिपीलिका की सब से बड़ी और उत्तम इल्ली चुनती है। और उसी के ऊपर अंडे देती है। कुछ ही समय में इन अंडों से तितली की इल्ली उत्पन्न होती है और पिपीलिका-शिशु (इल्ली) के रक्त को अपने पोषण का आधार बनाती है। पिपीलिका की इल्लियाँ तितली के नवजात शिशु (इल्लियों) द्वारा रक्त चूस लिए जाने से मृत हो जाती हैं। केवल चर्म कंकाल ही शेष रह जाता है। उधर तितली की इल्ली पुष्ट होती जाती है। पिपीलिका के शिशुओं का पोषण करने वाली सेविकाएँ इन इल्लियों को भी आहार प्रदान करती जाती हैं। ये पराए तो होते हैं परन्तु पिपीलिकाओं की इल्लियाँ जहाँ अत्यन्त ही कुरूप, बेडौल होती हैं, वहाँ सौन्दर्य की मूर्ति तितलियों की इल्लियाँ भी सुन्दर होती हैं। फिर श्रमिक पिपीलिकाएँ उन अतिथियों का सत्कार क्यों न करें।

उधर पिपीलिकाओं की संख्या-वृद्धि न्यून होती जाती है। इल्लियों का अकाल ही अन्त होता जाता है परन्तु इस रहस्य का पिपीलिकाओं को कुछ भेद ज्ञात नहीं हो पाता। सुन्दर पंखों के

धोखे से तितलियाँ उनकी जाति का भारी ह्रास करती जाती हैं। अन्त में तितलियों की इल्ली से प्यूपा बन कर पंखदार कीट उत्पन्न होते रहते हैं। उनकी भी पिपीलिकाओं द्वारा रक्षा तथा सेवा होती है। अंडे से सुन्दर पंखदार तितली रूप उत्पन्न होने में आठ-दस दिन लगते हैं। इन सुन्दर परों के कीट ही अपने सौन्दर्य से पिपीलिकाओं को वशीभूत किए रहते हैं। इनको सुन्दरता के कारण पिपीलिकाएँ आजीवन अपने बिल में रखना चाहती हैं। परन्तु ये स्वभावतया गगनचारी होते हैं। अँधेरे बिल में कब तक पड़े रहें। बलपूर्वक बिल में भीतर घसीटे जाते रहने पर भी किसी दिन एक-एक कर सभी तितलियों की प्रौढ़ सन्तानें बिल के बाहर उड़ जाती जाती हैं। गगनचारी को भूचारी कहाँ तक दबा रख सकने में समर्थ हो सकता है।

एक दूसरी तितली भी पिपीलिकाओं द्वारा अपना पोषण कराती है परन्तु वह इनकी इच्छा से पोष्य नहीं बनी होती बल्कि बलात् इनका अतिथि बनती है। इसलिए इसे परोपजीवी कहना उचित है। यह पिपीलिकाओं के शिशु (इल्ली) अवस्था में ही रहने पर उनके ऊपर अंडे दे आती है। तितली के अंडों से इल्लियाँ उत्पन्न होने पर पिपीलिकाओं की इल्लियों के गले में हार समान लिपट जाती हैं। उनका मुख पिपीलिका की इल्ली के मुख के ठीक नीचे होता है। जब सेविका पिपीलिकाएँ अपने शिशु (इल्लियों) को आहार प्रदान करने आती हैं, तो तितली की इल्ली ही वह सब आहार ग्रहण करती है। इस जाति की सेविकाएँ या श्रमिक पिपी-लिकाएँ अन्धी ही होती हैं। अतएव तितलियों की इल्लियाँ उनके अंधेपन से पूर्ण लाभ उठा कर अपनी उदरपूर्ति करती हैं। इतना ही नहीं। यदि वे सेविका पिपीलिकाओं द्वारा प्रदान किए आहार से अपना पेट भरा नहीं देखतीं तो अतिरिक्त आहार प्राप्त करने के

लिए कौशल से काम लेती हैं। वे जिस पिपीलिका इल्ली का गला लपेटे पड़ी होती हैं, उसे दबोच कर आर्त्तनाद सा संकेत करने के लिए विवश करती हैं। सेविका-पिपीलिकाएँ उससे यह समझती हैं कि उनकी इल्ली भूखी ही रह गई है। इसलिए अतिरिक्त आहार पहुँचाने का प्रबन्ध करती हैं।

जब कोया में शरीर लिपटा रखने का समय आता है तो तितली की इल्ली पिपीलिका की इल्ली के कोए में ही लिपटे रहने का उपक्रम करती है परन्तु इसके लिए वह अपना मुँह उलटा कर पिपीलिका की इल्ली के पीछे चिपक जाती है। यह बड़ी चतुराई का कार्य होता है। जब कोया काट कर प्यूपा (कोयाधारी इल्ली) के बाहर निकलने का समय होता है तो पिपीलिका की इल्ली स्वयं बाहर नहीं आ पाती। उसे सहायता की आवश्यकता होती है। कोई सेविका पिपीलिका सामने से कोया नोच लेती है। ऐसी स्थिति में यदि तितली की इल्ली पूर्व अवस्था में ही पिपीलिका की इल्ली के गले से चिपकी पड़ी रहती तो कोए का अग्रभाग सेविका द्वारा काट कर खोले जाने पर कदाचित तितली की इल्ली (प्यूपा) का अंग दो टूक होकर ही रहता किन्तु पता नहीं, उसे इस भावी घटना का कैसे आभास मिल गया होता है जिससे वह कोए के पिछले भाग में चिपकी पड़ी रहती है।

जब कोए से इल्ली पिपीलिका का पलटा हुआ पूर्ण पिपीलिका रूप बाहर होता है तो उस समय भी तितली बाहर नहीं निकलती, बल्कि उस कोए में ही दबी पड़ी रहती है। जब गृह की स्वच्छता के लिए साधारण रूप में अन्य व्यर्थ की वस्तुओं की भाँति खाली कोए भी बिल के बाहर पिपीलिकाओं द्वारा अपने घूरे पर फेंक दिए जाते हैं तो एक बार बाहर स्वतंत्र हो जाने पर तितली खोखले कोए से निकल भागती है।

इनका परोपजीवीपन इसी स्थल पर समाप्त नहीं होता। जब प्रौढ़ावस्था में नर-मादा का संयोग होने के बाद अंडा देने का अवसर आता है तो पिपीलिकाओं के गृह में ही छद्म से पली हुई तितली की मादा पुनः पिपीलिका के बिल में प्रवेश कर उसकी इल्लियों के ऊपर अंडे दे आती है और यह चक्र बराबर ही चलता रहता है।

पिपीलिकाएँ अपने सारे समाज के लिए विशेष उदर रखती हैं जिनको संघोदर (क्राप) नाम दिया गया है। जहाँ भी किसी सहेली या सजातीय सदस्य ने आहार की याचना की कि वह खड़े होकर अपने संघोदर से एक बूँद खाद्यरस या मधु मुख के निकट ला कर उसके मुख में उँडेल देने की उदारता दिखलाती है। एक भुनगा ठीक इसी अवसर पर मधु आदान-प्रदान करने वाली दो पिपीलिकाओं के मध्य जा पहुँचता है और एक के मुख के अग्रभाग से उँडेला मधु दूसरे के मुख में जाने ही वाला होता है कि नीचे से बीच में लपक कर उस मधु का पान कर लेता है। बेचारी पिपीलिकाएँ अपनी सरलता से इस दस्यु कीट की चोरी का शिकार बनती हैं।

कुछ पोष्य कीट पिपीलिकाओं को उपकार का बदला भी देते हैं। पिपीलिकाओं का आकार स्वयं ही क्षुद्र होता है। फिर भी उनके शरीर पर अपेक्षाकृत अत्यन्त क्षुद्र पिस्सू लगे होते हैं। उन पिस्सुओं को वे पोष्य कीट खा जाते हैं। इस तरह ये पोष्य कीट जूँ या पिस्सू-हरण करने के अतिरिक्त बिल का कूड़ा-कचरा बाहर फेंक आने तथा पिपीलिकाओं के शरीर की अर्द्ध तरल चिकनाई बिल की दीवालों में चिपकी होने पर उसको नोच खाने का कृत्य करते हैं। आहार और निवास का सुभीता मिलने का यह प्रत्युपकार होता है।

पिपीलिकाओं के पोष्य कीटों की कुछ लोमहर्षक कहानियाँ भी हैं। एक स्वर्ण रोमीय भुनगा होता है। इसके नाम पड़ने का कारण यह है कि इसके शरीर पर सोने के समान पीले रंग के

भुनगे का स्रवित रस पीकर पिपीलिकाएँ मूर्छित हो जाती हैं।

बालों के गुच्छे उगे होते हैं। उससे ऐसी सुगन्ध का पदार्थ उत्पन्नहोता है जो पिपीलिकाओं को उन्मत्त बना देता है। वे इस गन्ध को पाकर आनन्दविभोर हो उठती हैं। केवल सुगन्ध की ही उत्पत्ति नहीं होती, इस भुनने के बालों से एक मादक रस

भी स्रवित होता है जो अमृत समान मधुर होता है। इस मधुरस का पान कर पिपीलिकाएँ मदान्ध हो उठती हैं।

स्वर्णरोमीय भुनगा एक कुरूप कीट ही है, परन्तु सुगन्ध तथा मादक मधुरस पिपीलिका की एक जाति को विशेष आकृष्ट करता है। वह भयानकता में घड़ियाल सा रूप रखता दिखाई पड़ता है। उसकी पीठ से नीचे कूर्चवत रोम-गुच्छ की पंक्तियाँ निकली होती हैं। इस विद्रूप कीट के पीछे पिपीलिकाएँ झुण्ड बाँधकर चलती हैं तथा कूर्च समान रोम-गुच्छों से प्रसारित गन्ध का आनन्द लेती तथा उससे स्रवित मधुरस का पान कर मादकता का अनुभव करती रहती हैं। हम समझते हैं कि मनुष्यों में ही मादक द्रव्यों के सेवन की कुवृत्ति होती है परन्तु दोषों या जीवन की दुर्बलताओं का प्रसार कीट-जगत में भी पाया जाता है।

एक दूसरा भुनगा भी पीतरोमीय होता है जो अत्यन्त ही भयानक मादक रस उत्पन्न कर लम्बग्रीव पिपीलिकाओं की एक जाति को मदान्ध बनाता और प्राणहरण कर लेता है। इसका निवास भुनगे की भाँति पिपीलिका के बिल मेंन होकर बाँस से बनस्पति पर होता है। किन्तु पिपीलिकायें उसका पता लगा लेती हैं। इसके शरीर पर सुनहली मद्य-प्याली होती है। उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पिपीलिकाएँ उसके हरे गृह तक पहुँचती हैं। उसकी मद्य-प्याली का मद्य वे उस समय तक पीती ही जाती हैं जब तक वे मूर्च्छित होकर भूमि पर नहीं गिर जातीं। एक-एक कर सभी पिपीलिकाएँ मद्यपान कर इसी दुर्दशा को पहुँचती हैं। जब सभी पिपीलिकाएँ मद्यपान के विष से मूर्च्छित बन धराशायी हो जाती हैं, तब यह कीट राक्षस अपनी भीषण वृत्ति दिखाने का अवसर पाता है। वह नीचे उतर कर एक-एक मूर्च्छित पिपीलिका का अङ्ग छेदन कर उनके शरीर का रस चूस लेता है। केवल ऊपरी त्वचा

भर ही छोड़कर इनको निष्प्राण बनाता है। सारी मूर्च्छित पिपी-लिकाओं का रूप पूर्णत: चूसे बिना वह चुप नहीं लगाता। मद्य पान का यह भीषण परिणाम इन मदान्ध पिपीलिकाओं को भोगना पड़ता है। कदाचित् इस अन्त लीला का पता इस जाति की सन्तानों या शेष पिपीलिकाओं को नहीं लगता। इसी कारण मद्यपान में लिप्त होने और अपना नाश कराने का चक्र जारी रखती हैं। रक्तवर्णीय पिपीलिकाओं द्वारा अनेक सुगंधोत्पादक आततायी भुनगों को पोष्य रखने के उदाहरण पाए जाते हैं। यदि किसी कारणवश इन पिपीलिकाओं को अपना बिल बदलना पड़ता है तो वे इन आततायी सुगन्धोत्पादक भुनगों की इल्लियाँ अपनी इल्लियों की अपेक्षा अधिक सावधानी से ढो ले जाती हैं। वह किसी वासना में लिप्त होने का ही दुष्परिणाम है। कोई विपत्ति पड़ने पर ये पिपीलिकाएँ केवल अपनी मादकप्रियता के कारण रानी पिपीलिका से भी पहले इस भुनगे की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगी।

कभी-कभी पिपीलिकाओं के अत्यधिक स्नेह के कारण भुनगों के प्राण के लाले भी पड़ जाते हैं। जब ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है तो तृषा से आतुर होकर पिपीलिकाएँ पोष्य भुनगे से अधिक से अधिक रस की माँग करने लगती हैं। मादक रस का पान करने के लिये इस भुनगे की पीठ चाटते-चाटते वे नग्न कर देती हैं। त्वचा छिल जाती है। उस दशा में यह भुनगा, जो उपर्युक्त पिपीलिकाभक्षक भुनगे से आकार में अपेक्षाकृत छोटा होता है, अपनी जान छुड़ाने के लिए वहाँ से भाग निकलता और फिर शीत ऋतु के आगमन पर ही लौटता है जिससे उस समय अधिक मधुरस की माँग न हो सके। भुनगों के मादक रस के चक्कर में पड़ने का बदला भी पिपीलिकाओं को भोगना पड़ता है।

भुनगों की इल्लियों का भोजन पिपीलिकाओं के अंडे होते हैं। पिपीलिकाओं की इल्लियों का पोषण भी उन अंडों द्वारा ही होता है। अतएव खाद्य की न्यूनता निश्चित होती है। फलतः पिपीलिकाओं की सन्तानें कृशकाय होती हैं। इस दशा में पिपीलिकाओं के जाति-नाश को रोकने वाली कुछ घटनाएँ होती हैं। पिपीलिकाएँ अपनी इल्लियों को प्यूपा बनने पर भूमि में गाड़कर दीर्घ शयन करने देती हैं परन्तु वे रह रहकर उन्हें फिर अन्यत्र गड्ढों में रखती रहती हैं। वे अपनी इसी साधारण वृत्ति के कारण भुनगे की कोयाधारी इल्ली (प्यूपा) को भी कहीं गाड़ती और फिर उभाड़ कर अन्यत्र गाड़ने का उपक्रम करती हैं। पिपीलिका की कोयाधारी इल्ली (प्यूपा) इस फेर बदल से कोई हानि नहीं उठाती, परन्तु भुनगे की कोयाधारी इल्ली एक बार गड़कर फिर उभाड़े जाने पर जी नहीं पाती। उसको बार-बार उभाड़ने से स्वभावतः मृत्यु आ घेरती है। यह पिपीलिकाओं की जाति के लिये अनजाने ही एक वरदान मिलता है, परन्तु कुछ भुनगे के प्यूपा भूल से कहीं गड़े भी पड़े रह जाते हैं। इसलिये उससे भुनगे का जन्म हो जाता है।

एक भुनगा पिपीलिका-चोर होता है। यह अंडे बच्चे या क्लांत पिपीलिकाएँ उठा ले जाता है। कहीं चोरी करने में मुठभेड़ होने पर यह पिपीलिकाओं के ऊपर एक दुर्गन्ध फेंकता है जिससे वे भाग खड़ी होती हैं। कुछ कीट आकार में समानता रखने के कारण धोखा देकर बिलों में घुस जाते हैं और किसी पिपीलिका से मधु की भीख माँग बैठते हैं। जहाँ उसने संघोदर का मधु मुख में लाने का प्रयत्न किया कि वे उसे धर दबोचते हैं।

आततायी पिपीलिकाएँ

पिपीलिकाओं में जहाँ कितने ही गुण उल्लेख योग्य पाए जाते हैं, वहाँ कुछ जातियों की पिपीलिकाएँ अपनी दुष्टता के लिए ही प्रसिद्ध हैं। एक जाति चौर पिपीलिका कही जाती है। यह सब से छोटी जाति की होती है। इसके छोटे होने का विशेष प्रयोजन भी है। इसके श्रमिक बहुत ही छोटे होते हैं किन्तु रानी कभी-कभी उनसे सहस्रगुना बड़े आकार की होती है। ये अपना गृह या तो बड़ी पिपीलिकाओं के बिल के अन्दर ही बनाती हैं या कहीं निकटवर्ती स्थान में ही बनाती है जहाँ से किसी पतली सुरंग द्वारा बड़ी पिपीलिका के विवर से सम्बन्ध स्थापित कर लें। ये आकार में छोटी होने से पतले बिल में ही चल-फिर सकती हैं। अतएव अपने बिल से कोई पतली सुरंग बड़ी पिपीलिका के बिल के अन्दर तक बनावें तो उस पतली सुरंग के अन्दर बड़ी पिपीलिकाओं की मूँछ भी प्रवेश नहीं पा सकती। अतएव ये उनके अण्डे चुरा कर झट से अपने बिल में घुस जाती हैं। इतनी सरलता से खाद्य-द्रव्य रूप में बड़ी पिपीलिका के अंडे श्रमिकों द्वारा चुराए जाते रहने का ही यह परिणाम होता है कि खाद्य की प्रचुरता से रानी के शरीर की इतनी अधिक वृद्धि होती है। ये क्षुद्र पिपीलिकाएँ चोरी के लिए ही बदनाम हैं। इसीलिए इन्हें चौर पिपीलिका कहते हैं।

एक पिपीलिका डकैत या दस्यु कहलाती है। यह दुष्ट

पिपीलिका भी छोटे ही आकार की होती है और कृषक पिपीलिका के बिल में रहती है। कहा जाता है कि कृषक या खेतिहर पिपीलिका स्वयं ही खेत बोती और काटती है। बात चाहे जो हो, परन्तु किसी घास के दाने पकने पर यही उसे तोड़कर संग्रह अवश्य करती है। यह उसका आहार होता है। डकैत पिपीलिका इस पिपीलिका को दाना ढो ले जाते देखकर किसी बहाने चौंका कर इसे मुख खोलने के लिए विवश करती है। मुख से दाना हटते ही यह उसे ले भागती है। कृषक पिपीलिका दाने का लूटा जाना तो सहन कर लिया करती हैं। उसके लिए युद्ध करना ठीक नहीं समझती परन्तु जब वह अपने अण्डे-बच्चे स्थानांतरित कर रही हो तब भी डकैत पिपीलिका उसे लूट ले जाने का प्रयास करती है। उस समय अपनी जाति-रक्षा के प्रश्न को महत्वपूर्ण समझकर कृषक पिपीलिका युद्ध छेड़े बिना नहीं रह सकती। डकैत पिपी-लिकाओं की नीति दानों के लिए छोटे दल रूप में या अकेले दाना ढोकर लाने वाली कृषक पिपीलिका पर टूट पड़ना होता है। किन्तु जब युद्ध होता है तो बड़ी कृषक पिपीलिका पर बहुसंख्यक क्षुद्र लुटेरी पिपीलिकाएँ टूट पड़ती हैं। उसके पैर काटने लगती हैं। शरीर को छाप सी लेती हैं।

कृषक पिपीलिका का कष्ट सहने का धैर्य जब टूटने लगता है और वह किसी प्रकार लुटेरी पिपीलिका से छुटकारा पाने का निश्चय कर लेती है तो एक हंगामा मचता है। नम स्थानों में केंचुए अपने बिलों को खोद-खोदकर ऊपरी तल पर लम्बे लोंदे रूप में मिट्टी ही मल की भाँति विसर्जित किए रहते हैं। उनकी ढेरी स्थान-स्थान पर चारों ओर फैली होती है। कृषक पिपीलिकाएँ केंचुए की विसर्जित मिट्टी उठा-उठाकर डकैत पिपीलिका के बिल में फूँकना प्रारम्भ करती है। उधर से डकैत पिपीलिका अपने बिल

का द्वार स्वच्छ करने का बराबर प्रयत्न करती जाती है किन्तु इधर से बार-बार कृषक पिपीलिकाएँ वह मिट्टी ढूँढ़-ढूँढ़ कर उसके बिल में फेंकती ही जाती हैं। अन्त में डकैत पिपीलिका हार मानकर वहाँ से अपना बिल छोड़कर भाग जाती हैं और कृषक पिपीलिका की विपत्ति मिटती है। डकैत पिपीलिकाएँ जब अपने अण्डे-बच्चे लेकर चली जाती हैं तो उसके बिल का चिन्ह तक मिटा देने के लिए कृषक पिपीलिकाएँ भूमि को सपाट बना देती हैं। इस तरह पूर्ण शान्ति में उनका जीवन व्यतीत होने लगता है। एक दुष्ट प्रकृति की पिपीलिका से बचने में उनका साहस-पूर्ण प्रयास समाप्त हो जाता है।

एक पिपीलिका शोणितरक्त (खून सी लाल) कही जाती है। इसकी रानी लाल और काले रंग की होती है। इसका आततायीपन कृष्णधूसर (काली धूसर) पिपीलिका को सहन करना पड़ता है। प्रथम सुहागउड़ान के पश्चात् गर्भान्वित होकर शोणितरक्त पिपीलिका की रानी न तो कहीं प्रस्तर खण्ड या वृक्ष के छालों की आड़ ढूढ़ती है और न कहीं बिल ही बनाती है। वह सीधे कृष्णधूसर पिपीलिका की टोह में चलती है। यदि इस जाति की पिपीलिकाओं का मार्ग प्रशस्त और किसी बड़े उपनिवेश का होने से लम्बा होता है तो उसे देखकर ही वह चली जाती है। परन्तु कोई छोटा मार्ग ही दिखाई पड़ा जो कृष्णधूसर पिपीलिका के किसी छोटे उपनिवेश तक जाता जान पड़ता है तो शोणितरक्त रानी वहीं ठहर कर कुछ सोचने लग जाती है। वह सोचती है कि यह उपनिवेश अवश्य ही छोटा होगा, प्रहरी भी थोड़ी संख्या में होंगे। वहाँ की पिपीलिकाएँ उसके विश्वास के धोखे में कदाचित सहज में आ सकती हैं। अतएव बिल के निकट जाकर वह अपने लाल, काले रंग का शरीर लेकर उन पिपीलिकाओं से हिलमिल

जाने का प्रयत्न करती है। जो पिपीलिकाएँ बाहर से आहार प्राप्त कर बिल में वापस जाती होती हैं उनके साथ लगी रहकर वह बिल के द्वार तक पहुँच गई होती है।

प्राणी दुर्बल होने पर भी अपने गृह में कुछ बल का अनुभव करता है। कहा भी जाता है कि घर में कुत्ता भी शेर बना रहता है। अतएव कृष्णधूसर पिपीलिकाएँ क्षुद्रकाय होने पर भी इस विचित्र आगंतुक को द्वार पर रोकती हैं। एक जाति की निर्दिष्ट गंध द्वारा पहचान होती है। धूसर पिपीलिकाएँ अपनी जातीय गंध उस आगंतुक में नहीं पातीं। स्वभावतः उसके प्रति विरोध भावना उत्पन्न होती है परन्तु आगंतुक रानी कुछ बोलती नहीं। केवल अपनी संवेदनशील पूँछ हिला-हिलाकर क्षमायाचना-सी करती रहती है। अपने निकट घेरने वाली धूसर पिपीलिकाओं को संवेदनशील पूँछ से थपथपाती भी है। जीभ से आहार भी प्रदान करने लगती है। बेचारी धूसर पिपीलिकाएँ संदेह की दृष्टि से ही देखती रहती हैं किन्तु कुछ समझ नहीं पातीं। वे तो धूसर रंग की हैं, किन्तु यह काले रङ्ग की वस्तु क्या है, कहाँ से आ गई।

कुछ समय में निर्णय कर सकने में असमर्थ होकर धूसर पिपीलिकाएँ कुछ साहस कर बैठती हैं। उनमें कोई एक उसे भगाने का उद्योग करने के लिए उसके पैर को काट खाती है। बस, इतनी सी बात हुई नहीं कि उनके लिए विपत्ति प्रारम्भ हो गई। शोणित-रक्त रानी पिपीलिका इस घड़ी की प्रतीक्षा-सी करती रहती है। पैर काट खाए जाने पर ही वह उत्तेजित होकर पीठ पीछे कर घूम जाती है और एक विष (फार्मिक ऐसिड) की फुहार उनके ऊपर छोड़ देती है। फार्मिक ऐसिड एक ऐसा विष है जिसके त्वचा पर पड़ने पर जलने के कारण फफोले पड़ जायँ। अतएव शोणितरक्त रानी पिपीलिका विजयी होती है। कृष्णधूसर पिपीलिकाएँ भाग

खड़ी होती हैं। प्रहरियों का तो शव ढेरी रूप में द्वार पर एकत्र हो जाता है। सभी शेष पिपीलिकाएँ त्रस्त हो तितर-बितर हो जाती हैं।

एक बार विष-वर्षा कर चुकने के पश्चात् शोणितरक्तीय पिपीलिका के मार्ग में कोई बाधा नहीं रह जाती। वह बिल के अन्दर प्रवेश कर जाती है। कहीं कोई प्रतिद्वन्द्वी या बिल-रक्षक सामने नहीं दिखाई पड़ता। जहाँ कहीं भी वह बिल के भीतर जाती है, इस रक्तकृष्ण रंग के दानव से सभी अत्यन्त भयग्रस्त हो तीव्र वेग से भाग जाते हैं। कहीं कोई साहसी धूसर पिपीलिका सामने खड़ी भी हो जाय तो उसे शोणितरक्त रानी चीर कर फेंक देती है। अब उसे अपनी संवेदनशील मूँछ को हिला-हिलाकर उनकी चाटुकारिता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल उनका विनाश तथा विष-वर्षा ही एक मार्ग होता है।

एक-एक कर बिल की सभी धूसर पिपीलिकाएँ पराभूत हो जाती हैं। वे सामने ठहर नहीं सकतीं। या तो विनष्ट हो जाती हैं या विजित की भाँति डरी हुई कहीं दुबकी पड़ी ही रहती हैं। शोणितरक्त रानी का एक कार्य शेष रह गया होता है। बिल की रानी को पराभूत करना अत्यावश्यक होता है।

बिल में युद्ध करते अपना आधिपत्य जमाते जाने में कभी-कभी शोणितरक्त रानी को कई दिन लग सकते हैं। अन्त में धूसर रानी के पराभूत होने का समय आता है। उसके चारों ओर रक्षकों के शव ढूहे से एकत्र हो जाते हैं। उसे एकाकी इस भीषण आगंतुक रानी से भिड़ना पड़ता है किन्तु शोणितरक्त रानी की विजय निश्चित ही रहती है। उसके पास तो विषैली गैस की भी व्यवस्था रहती है जिसे मनुष्य ने तो नर-संहार के लिए अब ज्ञात किया है परन्तु पिपीलिका जगत में चिरकाल से ही ज्ञात रहती आयी है।

धूसर पिपीलिकाओं के भावी भाग्यक्रम को हम अनुमानित

कर सकते हैं। उनके अंडों-बच्चों की पुनः उत्पत्ति नहीं हो सकती। जो अंडे उस समय तक दिये जा चुके होते हैं उन्हीं से संतान उत्पन्न हो सकती हैं तथा उस समय तक विकसित इल्लियों तथा प्यूपा से प्रौढ़ पिपीलिकाएँ उत्पन्न हो सकती है परन्तु जो प्रौढ़ पिपीलिकाएँ शेष रह गई होती हैं या इन अंडों, इल्लियों आदि से उत्पन्न हो सकती हैं, उन सबको अब केवल दासता का ही जीवन व्यतीत करना होता है। विवशता की ऐसी स्थिति होती है कि वैरगिया नाला में तीन चोरों द्वारा नौ गवैयों के नचाने की कथा भी फीकी पड़ जाती है। धूसर पिपीलिका रूप के दासों की संख्या अधिक हो सकती है किन्तु वे विद्रोह नहीं कर सकतीं। शोणितरक्त रानी के दिए अंडों तथा शिशुओं का पोषण करती समय बिताती हैं। इनसे उत्पन्न शोणितरक्त पिपीलिकाएँ आजीवन कोई काम नहीं करतीं। केवल मुफ्त में भोजन करना और आमोद-प्रमोद में ही दिन भर पड़े रहना उनका ध्येय होता है। जब दास पिपीलिकाओं की न्यूनता होती है तो शोणितरक्त श्रमिक पिपीलिकाएँ सेना रूप में आक्रमण कर दूसरे बिल की धूसर पिपीलिकाओं के शिशु लूट लाती हैं। उससे उनके दासों की कमी पूरी हो जाती है और स्वयं आमोद-प्रमोद में ही रहा करती हैं। कहा जाता है कि वे कितनी ही प्रकार की क्रीड़ाएँ किया करती हैं। कुश्ती या अन्य खेलों का प्रदर्शन करती हैं, परन्तु आहार लाने, बिल की मरम्मत करने, शिशुओं का पालन करने, रानी की सेवा करने आदि का सब कुछ कार्य दास पिपीलिकाएँ ही करती हैं। कहा जाता है कि कभी-कभी धूसर पिपीलिकाएँ शोणितरक्त श्रमिक पिपीलिकाओं से सौगुनी अधिक संख्या में इस पराजित बिल में हो सकती हैं, परन्तु वे सामना नहीं करतीं। शोणितरक्त के श्रमिक का आकार भी बड़ा होता है। यदि छः धूसर पिपीलिकाएँ उसके पैर में आ चिपकी हों, तब भी उन्हें एक

झटके में छुड़ा सकती हैं। यही नहीं, शोणितरक्त पिपीलिका को प्राचीन राजा-महाराजाओं की भाँति दासों द्वारा कंधे पर ढोये जाने के नमूने पर धूसर पिपीलिका दासों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसे ढोए जाते देखा जाता है।

एक पिपीलिका स्कैंप या गिद्ध पिपीलिका कही जा सकती है। जब कहीं दो पिपीलिकाओं की सेनाओं में युद्ध होने लगता है तो यह वहाँ अवश्य पहुँच जाती है। मृतों या आहतों को ऐसे अवसर पर धराशायी होते ही खा जाना इनका कृत्य होता है। इस जाति की पिपीलिका को एक जघन्य जाति की रानी पिपीलिका अपना पारिवारिक दास बनाती है। इस रानी को खनक (माइनर) जाति का कहा जाता है।

स्कैंप या गिद्ध पिपीलिकाएँ असभ्य कीट कही जा सकती हैं। उनमें कोई नियम नहीं होता। बिल क्या होता है, घास के ही अन्दर जगह होती है। मिट्टी की ढेरी-सी होती है। उसके अन्दर घास की जड़ें भी निकल आई होती हैं। खनक (माइनर) रानी इनके बिल के पास उस समय जाती है जब नव-गर्भान्वित होने के पश्चात् कहीं बसने की चिन्ता होती है। बुद्धू-सी बनकर स्कैंप पिपीलिकाओं के द्वार पर जा खड़ी होती है। वे इसे कुछ आक्रमण का स्वांग न करते देख कर पकड़ लेती और बिल में घसीट ले जाती हैं। किसी के काट लेने पर भी चुप ही लगाये रहती है। बिल में यह निरापद-सी ही जान पड़ती है परन्तु बुद्धू बनी रहकर भी यह अपनी ताक में रहती है। एक दिन अंडों बच्चों की ढेरी के ऊपर जा बैठती है। वहाँ इस पर कोई प्रहार नहीं कर सकता। दूसरी स्कैंप (गिद्ध) पिपीलिकाएँ इसे स्नेहभाजन-सा अनुभव करती हैं। वे किसी दिन इसे अपनी रानी की पीठ पर जा बैठा देखती हैं परन्तु उन्हें भ्रम होता है कि यह निरापद ही है। उधर खनक (माइनर)

रानी पिपीलिका स्कैंपों की रानी पिपीलिका की गर्दन अपने सँड़सी-नुमा जबड़े (संदंश मुख) में दबोच लेती है और उसे अधिकाधिक दबाती ही जाती है। जब स्कैंप (गिद्ध पिपीलिका) रानी का गला कट जाता है तब भी श्रमिक पिपीलिकाएँ कुछ समझ नहीं पातीं। उनको अनुमान होता है कि किसी घातक रोग द्वारा उनकी रानी का प्राणान्त हो गया है। कहीं यही रोग उन्हें न आ घेरे, कदाचित उन्हें यह कल्पना भी भयग्रस्त कर देती हो। किन्तु सब काम पूर्ववत् चलता रहता है। एक रानी न सही, दूसरी ही सही। उसी तरह के अंडे उन्हें उत्पन्न होते दिखाई पड़ते हैं। वे उनका पालन करती हैं। शिशु भी उत्पन्न होते हैं किन्तु धीरे-धीरे खनक जाति की ही वृद्धि होती जाती है, उधर स्कैम्प जाति की नई उत्पत्ति अवरुद्ध होने से संख्या न्यून होती जाती है। उनकी रानी मृत हो चुकी रहती है। श्रमिक स्कैम्प पिपीलिकाएँ अंडा देकर संतानवृद्धि कर ही नहीं सकतीं। अतएव वे अपनी जाति का अंत देखने के लिए विवश होती हैं।

कृषक पिपीलिका

कृषक पिपीलिका न कह कर यदि वन्य अन्नजीवी ही नाम दिया जाय तो उन पिपीलिकाओं का नाम सार्थक हो सकता है जो बिल के निकट की भूमि में जंगली घासों में उत्पन्न नन्हें दानों को पकने के समय घासों के ऊपर से ही उनकी नन्हीं बालियाँ काट लाती हैं या नीचे गिरे दाने ही उठा लाती हैं। इनको हाथ से बोने का कार्य सम्पादन नहीं करतीं। ऐसा सम्भव है कि बिल के निकट जो भूमि इनके द्वारा स्वच्छ की हुई हो उसमें इनके मुख में वहन होने वाले दाने स्वयं गिर कर घासों को खेत रूप में उत्पन्न होने का दृश्य उपस्थित करें। परन्तु इन जंगली घासों की फसल काटने की अन्तर्वृत्ति भी कम प्रशंसा की बात नहीं है। किसी प्रकार कृषक पिपीलिका नाम से ही इन्हें प्रचलित रखना कोई अधिक अनुचित नहीं है।

कृषक पिपीलिका या वन्य अन्नजीवी पिपीलिकाओं की सभी जातियाँ भीम पिपीलिका (मिरमिसाइमी) अनुवंश की होती हैं। दक्षिणी योरप में मेस्सोर नामक प्रजाति की सभी जातियों तथा फीडोल, ओक्सियोपोमिर मेक्स, और गोनियोना की कुछ जातियों को कृषक पाया जाता है। अमेरिका में वेरोमेस्सोर और पोगोनोमिर मेक्स की जातियाँ ऐसी हैं। मेस्सोर की जातियाँ भूमध्य सागर से दक्षिण अफ्रीका की उत्तमाशा अन्तरीप तक होती हैं और पूर्व में पूर्वी चीन तक फैली हैं। एशिया में फीडोल की भी दो जातियाँ होती हैं।

ये सभी कृषक पिपीलिकाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में केवल ४५° उत्तरी अक्षांश से दक्षिण तथा उष्ण कटिबंधों के अन्न उत्पादक क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। यथार्थ में ये अनुउष्णकटिबन्धीय वृत्ति की ही होती हैं।

इनके उपनिवेश प्रायः बड़े होते हैं। एक उपनिवेश में दस से साठ सहस्र तक सदस्य होते हैं। इनके बिलों के चारों ओर प्रायः ज्वालामुखी के मुख की चहारदीवारी की भाँति छोटी प्राचीर होती है। बिल के अन्दर दाना रखने के विशेष कक्ष होते हैं। एशिया में ज्वार तथा योरप में गेहूँ के दाने इनके द्वारा सचित किए पाए जाते हैं। यदि कभी वर्षा का पानी इनके बिल में प्रवेश कर जाय और दाने का कक्ष भी उससे प्रभावित हो जाय तो अपने भण्डार के सब दाने धूप निकलने के पहले ही दिन बिल के बाहर लाकर सुखाती हैं। सूखते समय बड़ी सावधानी से रक्षा करती रहती हैं। एक अन्य लाभ यह भी होता है कि दाने के अन्दर का अखाद्य श्वेत द्रव्य (स्टार्च) धूप के कारण परिवर्तित होकर सुस्वादु शर्करा बन जाता है।

समाजप्रिय पिपीलिकाओं में अनेक जातियों में श्रमिक वर्ग की छोटी, बड़ी और मझोली तीन उपश्रेणियाँ हो सकती हैं। उनके आकार तथा कार्यों में मूलतः तो कोई विशेष भेद नहीं होता, परन्तु आकार का क्रमिक रूप से छोटा-बड़ा रूप उपनिवेश भर में पाया जा सकता है। उन्हीं में किन्हीं को अपेक्षाकृत बड़े आकार के कारण दीर्घ श्रमिक, दूसरों को मध्यवर्ती श्रमिक तथा क्षुद्रकाय को क्षुद्र श्रमिक पिपीलिका कह सकते हैं। प्रायः प्रत्येक जाति की पिपीलिका में श्रमिकों के आकार में कुछ विभिन्नता होती है किन्तु बड़े समाजों की पिपीलिकाओं में आकार की ये विभिन्नताएँ अधिक हो सकती हैं। एक ही उपनिवेश की दीर्घ श्रमिक पिपीलिका का आकार क्षुद्र

पिपीलिका का दूना हो सकता है। बहुत-सी जातियों में मध्यवर्ती श्रमिक नहीं होते। दीर्घ और क्षुद्र उपश्रेणियाँ ही होती हैं किन्तु इनके कार्यों में भी दीर्घकाल तक पर्यवेक्षण करने पर भी कोई मौलिक भेद पा सकना असम्भव रहा है।

कृषक पिपीलिकाओं में फीडोल प्रजाति की सभी जातियों में दीर्घ तथा क्षुद्र श्रमिक के आकार में भारी अन्तर होता है। इनकी शरीर-रचना तथा व्यवहार में भी भेद पाया जाता है। इनमें दीर्घ श्रमिक को सैनिक कहते हैं। सैन्य अनुवंश में भी सैनिकों का रूप विशेष भिन्न होता है। कृषक पिपीलिकाओं में फीडोल प्रजाति के सैनिक अधिकांश समय सुस्त रह कर व्यतीत करने वाले होते हैं। श्रमिकों से इनके रूप में यह भेद होता है कि सिर चौकोर और बड़ा होता है। उसकी लम्बाई शेष पूर्ण शरीर के बराबर पाई जा सकती है। दानों के ऊपरी कड़े छिलके तोड़ने का काम ऐसे सैनिक या दीर्घ श्रमिक किया करते हैं। कृषक पिपीलिकाओं का यह बड़ा आवश्यक कार्य होता है।

कृषक पिपीलिकाओं का बिल विशाल बना होता है। चारों ओर स्वच्छ की हुई भूमि होती है। हमारे रहने के कमरों बराबर इनके आवास-स्थल का फैलाव होता है। गहराई भी अधिक होती है। बिल क्षुद्र प्रस्तरखंडों से भली-भाँति मढ़ी होती है जिसमें प्रत्येक टुकड़े की छोर ठीक दूसरे टुकड़े की छोर से सटी होती है। हमें देखने पर ऐसा ही ज्ञात हो सकता है मानो मानव-हस्तों की ही वह रचना है। इसी के नीचे बिल का भीतरी भाग होता है। कोई-कोई पिपीलिका अपने बिल की फर्श भी पत्थर के टुकड़े जड़ कर पक्की गच सी बना लेती है। इनकी सुन्दर छत से पानी तनिक भी नहीं चू सकता।

आधुनिक नगरों में भीड़ का धक्का बचाने के लिए किसी

सड़क को केवल सवारियों या व्यक्तियों के आने और किसी को जाने के लिए निर्दिष्ट कर दिया जाता है। एक दिशा में ही एक सड़क पर चलने की प्रथा का अनुकरण कुछ कृषक पिपीलिकाओं के उपनिवेश में बिल के ऊपर पाया जाता है। आने के लिए पृथक सड़क बनी होती है, जाने के लिए दूसरी बनी होती है। कहीं नंगे पर्वत पर ये मार्ग होते हैं तो उन्हें पहचान सकने के लिए किसी श्वेत पदार्थ से चिन्हित किया पाया जाता है। कुछ यह भी कहते है कि उनके शरीर से कोई पदार्थ निकलने से ही चलने के कारण वह चिन्ह बन गया होता है।

कृषक पिपीलिकाओं के श्रमिकों की उपश्रेणियाँ में राजगीर, बढ़ई, लकड़हारे, कृषक आदि का धन्धा बँटा हुआ सा होता है। जब जङ्गली दानों की फसल तैयार हो जाती है तो उसके दाने का संग्रह करने का कार्य बड़ी तत्परता तथा सावधानी से किया जाता है। कुछ पिपीलिकाए घासों के ऊपरी भाग (बालियों) को ही काट लेती हैं, दाना चुनती हैं। कुछ ठोकर बिल के द्वार तक पहुँचाती हैं। वहाँ से दूसरी भीतर अन्न-भंडार में पहुँचाती हैं। अन्त में इन्हें संचित करने वाली पिपीलिकाओं में कदाचित निरीक्षक होते हैं। वे देख लेते हैं कि दाना काम योग्य है या नहीं। सड़ा-गला दाना या अनुपयोगी पदार्थ वापस कर दिया जाता है। साधारण वाहक श्रमिकों में हम कुछ निपट-गँवार भी देख सकते हैं जो मार्ग में फेंकी व्यर्थ की वस्तु उठाकर बिल के अन्दर भेज देते हैं, परन्तु भीतर से निरीक्षक उन्हें बाहर फेंकने का आदेश दे देता है परन्तु प्रयोगों में ऐसा भी देखा गया है कि वाहक पिपीलिकाओं में ही ऐसा भी चतुर है जो मार्ग में कोई व्यर्थ की रद्दी वस्तु ला पटकी गई हो तो उसे तुरन्त स्वयं ही मार्ग से हटा फेंकता है। यह व्यवस्था पिपीलिकाओं की सामाजिकता का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती है।

दाने बिल में पहुँचा दिये जाने और छिलके उतार दिये जाने के बाद इस प्रकार सजाये जाते हैं जैसे फलों की दूकान में एक के ऊपर एक सज्जित फल दूर से ही दर्शनीय होते हैं। भोजन की व्यवस्था करने के लिये इन दानों का चूर्ण या आटा पीसने की आवश्यकता होती है। वह कार्य दीर्घ श्रमिक या सैनिक पिपीलिका
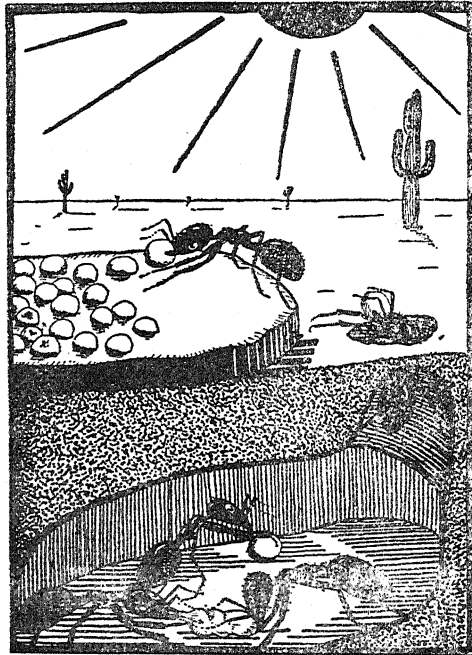
पिपीलिकाएँ रोटी बना कर धूप में सुखाती हैं।

द्वारा सम्पन्न होने पर रोटियाँ पकाने का क्रम आता है। चूल्हा तो नहीं जलता, किन्तु थूक में गूँध कर उनकी टिकिया धूप में सुखा

ली जाती है। यही उनके आहार करने की रोटी होती है। यदि गूँधे हुए आटे को खाया जाय तो कड़ुवा स्वाद होता है, परन्तु धूप में सुखाने पर वह मीठे स्वाद का हो जाता है। यह वैज्ञानिकों ने पिपीलिकाओं के दानों के सम्बन्ध में परीक्षण कर देखा है।

यदि कभी नमी के कारण दानों में अंकुर निकलने लगते हैं तो उन्हें नोचकर दानों को सुखा लिया जाता है। अतएव उनको सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके विपरीत यदि कभी उसे हरे आहार की आवश्यकता अनुभव होती है तो जिन दानों में पहले अंकुर नहीं निकला होता उनमें नमी पहुँचा कर अंकुर निकलने का अवसर देती हैं। ही उनको नोचकर आहार बनाया जा सकता है।

बुद्धि का बाहरी आभास दिलाने में मनुष्य की दाढ़ी (कूर्च) सफल होती है। इस धारणा का ही हम एक छोटा उदाहरण देखना चाहें तो कृषक पिपीलिकाएँ दाढ़ी रखाये मिलती हैं। उनका कुछ विचित्र उपयोग होता है। वे उनके लिये बुद्धि-प्रदर्शन का नाम निर्देशक पट न होकर एक आवश्यक अवयव होती हैं।

कृषक पिपीलिकाओं का गुच्छीय कूर्च उनकी स्वच्छता के उपकरणों में है। जब कहीं कार्य से लौटकर श्रमिक पिपीलिका थकान का अनुभव करती है या अवकाश पाती है, या भोजन करने जाना होता है, वह अपने शरीर की स्वच्छता करने लगती है। अगले पैरों में लगे कंघे तथा ब्रश से वह शरीर की धूल भली-भाँति जब झाड़ चुकती है तो उस कंघे तथा ब्रश में धूल चिपकी हो सकती है। उस मलिनता को दूर करने में इस गुच्छीय कूर्च का उपयोग होता है। अगले पैरों के कंघे उसमें रगड़ने से सारी धूल झड़ जाती है और वह स्वच्छ हो जाता है।

गुच्छीय कूर्च का एक अन्य विचित्र उपयोग भी कृषक पिपीलिका को करते पाया जाता है। धूल के झाड़ने से कूर्च के बाल

परस्पर आबद्ध बन गये होते हैं और उनसे एक प्याली सी बनी होती है। उस गुच्छीय कूर्च के इस परिवर्तित रूप की प्याली में पिपीलिका धूल के लोंदे वहन करने का दृश्य सम्मुख रखती है। यह दाढ़ी का कैसा विचित्र और सार्थक उपयोग होता है। कहीं बाहर से कोई पत्र या उपकरण न मिलने से शरीर के अङ्गों का ही विविध उपयोग उनके जीवन को सुगम बनाता है। जो पिपीलिकायें दानों से अंकुर निकलने पर उनके नष्ट हो जाने का भय दूर करने का उद्योग करती हैं, आवश्यकतानुसार नमी पहुँचा कर अंकुर उत्पन्न करा लेती है, दाने को पीस कर आटा बना लेती हैं, आटा गूँध कर रोटी पकाने का भी स्वाँग कर लेती हैं, वे यदि स्वयं दाने भी कहीं बोती हैं तो उसमें कोई घोर आश्चर्य नहीं हो सकता परन्तु ऐसी घटना सत्य न होने पर भी उनके शेष कार्य ही उनके गार्हस्थ्य जीवन की सुन्दरता प्रकट करने के लिये कुछ कम नहीं हैं!

फफूँद-उत्पादक पिपीलिकाएँ

फफूँद की खेती करने वाली पिपीलिकाएँ दिव्य पिपीलिका उपवंश (मिरमिसाइनी) की एट्टिनी नामक जातियों की ही होती हैं। ये दक्षिणी अमेरिका में ही पाई जाती हैं। इनका उपनिवेश लगभग ६०००० पिपीलिकाओं का होता है। इनके श्रमिक बहुत बड़े आकार के होते हैं, परन्तु उनका काम बड़ा नहीं होता। इनमें कोई सैनिक श्रेणी नहीं होती। अधिकांश एट्टिनी उपनिवेशों में कई रानियाँ होती हैं। उनमें से प्रत्येक दहेज की भाँति अपने मैके (मातृ-गृह) से फफूँद (कवक) उत्पादक सूक्ष्म सूत्र या अंकुर मुख के भीतर एक विशेष थैले में सुरक्षित रखकर अपने श्वसुरालय या नए उपनिवेश के स्थान तक लाती है। श्वसुरालय तो हम ने एक ध्वन्यात्मक रूप में कहा है अन्यथा उनके पति देवता या पति के जनक का तो कहीं पता भी नहीं होता। इस सूक्ष्म कवकीय अंकुर या सूत्र से ही इस नए उपनिवेश के अन्दर कालान्तर में कवक-(फफूँद) बाटिका उगाई जा सकती है। बाद में आने वाली रानियों के दहेज रूप के कवकीय अंकुरों को उत्पादन का आधार बनाने के लिए उगाने की आवश्यकता नहीं रह गई होती। पहली रानी के मुख में रक्षित कवक सूत्र को ही बोकर भारी कवक-वाटिका कर ली गई होती है। हाँ, यह प्रथम वाटिका कुछ अस्वस्थकर हो जाय तो उस दशा में अन्य रानियों के मुख का कवक-सूत्र उगाया जाना आवश्यक हो सकता है।

प्रत्येक रानी को कवक-सूत्र उगाने की आवश्यकता आवे या न आवे, वह रक्षित भंडार अपने मुख में रखकर ही वे अपनी जीवन-यात्रा मातृ-गृह के बाहर प्रारम्भ करती हैं। पता नहीं किस अन्तर्वृत्ति के कारण वे बाहर आने के पूर्व मातृ-गृह की कवक-वाटिका का एक अंकुर या उत्पादक सूत्र अपने मुख के विशेष गह्वर में अवश्य ही रख लेती हैं। इस कवक-सूत्र के बिना उनकी भावी सन्तानें जीवित ही नहीं रह सकतीं। अतएव नया उपनिवेश स्थापित ही नहीं हो सकता। उनकी सारी सन्तानों या कुल के सदस्यों का एक मात्र आहार यह कवक होता है। इसी कारण हम यह समझ सकते हैं कि आहार की सारी आवश्यकता-पूर्ति की सामग्री गृह के अन्दर ही उत्पन्न होने की सुन्दर व्यवस्था के कारण उन्हें किसी अन्य जातीय पिपीलिकाओं या कीटों की सम्पत्ति हरण करने की आवश्यकता ही नहीं होती। दासों को जुटाने की चिन्ता ही नहीं होती। ये कितनी आत्म-सन्तुष्ट, ईमानदार, चतुर तथा आदर्श जीवन वाली होती हैं! प्रारम्भ काल में कवक-वाटिका की रखवाली रानी को ही करनी पड़ती है। मुख से चबाई हुई पत्ती की आधार भूमि पर वह इस कवक-सूत्र को उगाती हैं तथा अपने विसर्जित मल की खाद द्वारा पुष्ट करती है। सन्तानें बड़ी होकर निकट के वृक्षों से पत्तियाँ काट-काट लाया करती हैं जिनको चबाकर लुगदी बनाकर कवक उगाए जाते हैं।

पत्तियों का एक टुकड़ा काटकर अपनी पीठ पर लादे श्रमिक पिपीलिकाएँ विवर में लौटती हैं। घन्टों चबाने के बाद उनसे लुगदी बनती है। उसी पर कवक को उगाया जा सकता है जो विकसित होते जाने का अवसर पाने पर छः-सात इञ्च ऊँचा हो सकता है परन्तु पिपीलिकाएँ उसे कभी भी एक दो जौ से अधिक ऊँची नहीं होने देतीं। उसे ऊपर से नोच-नोचकर अन्यत्र

लगाती रहती हैं। खेती बढ़ती जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि कवक की इतनी अधिक वृद्धि हो कि अल्प संख्या की पिपीलिकाएँ इसे खा न सकें। उस दशा में बिल से उन्हें भागकर ही इस वृद्धिशील वानस्पतिक दानव से छुटकारा पाना पड़ता है या पिपीलिकाओं की ही संख्या इतनी अधिक हो सकती है कि अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा में उत्पन्न कवकों से उनकी उदरपूर्ति न हो और वे भूखों मर जायँ।

विद्वानों ने पर्यवेक्षण कर देखा है कि प्रत्येक जाति द्वारा उत्पादित कवक विभिन्न प्रकार का ही होता है। एक प्रकार के जिस कवक (फफूँद) पर एक जाति जीती है, उसे खाकर दूसरी जाति नहीं रह सकती। इसीलिए जाति-रक्षा के लिए उसी विशेष जाति के कवक का उत्पादक सूत्र अन्यत्र ले जाकर उगाना उनका परम ध्येय होता है।

फफूँद या कवक वनस्पति सा ही पदार्थ हैं जिसे हम कभी-कभी छत्ता बनाये नम स्थानों में उत्पन्न देखते हैं। कुकुरमुत्ता नाम से यह छत्तेदार फफूँद पुकारा जाता है परन्तु बिना छत्ते के भी फफूँद होते हैं। उनके सहस्रों प्रकार हो सकते हैं। नम मकानों में जमी काई या बासी नम रोटियों, आर्द्र चमड़ों आदि पर कुछ हल्के हरे रङ्ग की जमी हुई दहिया भी फफूँदों के ही कोटि की है। इसी प्रकार का दहिया या फफूँद पिपीलिकाएँ उत्पन्न करती हैं। वह श्वेत से रंग की दहिया पिपीलिकाओं द्वारा विशेष रूप से लुगदी बनाई पत्तियों पर उगती है जो उनके बिलों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी उत्पन्न नहीं होती।

इन फफूँदों या दहिया की उत्पादक पिपीलिकाएँ विचित्रतम होती हैं। ये निरापद तथा शाकाहारी होती हैं। डंक या आततायीपन की गन्ध भी उनमें नहीं पाई जाती। यदि कभी उन पर

कोई जन्तु आक्रमण भी कर बैठता है तो वे नीचे लेटकर मृत होने का स्वाँग कर अपनी रक्षा करती हैं किन्तु उनमें दीर्घाकार, भड़कीले

पिपीलिकाएँ फफूँदी की खेती करती हैं।

सैनिकों की भी व्यवस्था होती है। इससे ज्ञात होता है कि निरापद शाकाहारी रहने वालों को भी विवश होने पर युद्ध करने के लिये सन्नद्ध रहना आवश्यक हो सकता है।

फफूँद-उत्पादक या पत्र-कर्तनक पिपीलिकाएँ सुन्दर रूप नहीं रखतीं। परन्तु यथार्थ सुन्दरता तो उसी में मानी जानी चाहिये

जिसका काम सुन्दर हो। इनका शरीर कड़े, कड़कड़ाते वालों या भद्दे छिछड़ों से आवेष्ठित होता है। इनके संदंश हनु (सँडसीनुमा-जबड़े) तोते के चंचु की भाँति एक दूसरे पर चढ़े होते हैं। टेकना की पत्रकर्तनक पिपीलिकाएँ अपने सिर के पीछे एक प्रकार की दुहरी सींगें रखती हैं जिन पर पत्तियों का काटा भाग ढोकर लाने में सुविधा हो।

फफूँद परोपजीवी होता है। स्वयं अपना खाद्य धरती के वक्ष-स्थल से प्राप्त करने की शक्ति नहीं रखता। सड़े-गड़े वनस्पतियों या जीवों के आधार पर ही यह उगता है। जो पदार्थ कभी प्राण-वान रह चुके होते हैं, उन्हीं के अवशेष में यह अपनी जड़ फैला कर पनपता है। इसीलिए पिपीलिकाओं को इसे उगा सकने के लिये निकट के जङ्गल से पत्तियाँ कुतर-कुतर कर बिल में लाना तथा मुख में देर तक कुचल-कुचल कर लुगदी बनाना पड़ता है। यदि पिपीलिका मूर्ख होती तो इस फफूँद को भी कहीं भूमि में ही अन्य वनस्पतियों की तरह उगने के लिये गाड़ती। किन्तु ये विभिन्न वृक्षों की पत्तियाँ, फूलों की पंखुड़ियाँ या बर्रे-विसर्जित मल या सड़े काष्ठ-खण्ड पर ही इसे उगाती हैं। इन सब पदार्थों को अपने मुख में कुचल तथा थूक से नम बनाकर ही वे फफूँद के उगने का आधार बनाती हैं। अपने शरीर से विसर्जित एक प्रकार के पीले रस को भी खाद रूप में इन पदार्थों में मिश्रण कर सकती हैं।

कुछ फफूँद-उत्पादक पिपीलिकाएँ बड़े बिल बनाती हैं तथा कुछ छोटे ही बिल बनाती है परन्तु एक बात इन सबके बिलों में यह होती है कि उनकी जाति के ग्राह्य विशेष रूप के फफूँद के उत्पादन के लिए विशाल कक्ष पृथक-रूप में कवक-वाटिका रूप होते हैं।

दक्षिण अमेरिका में पिपीलिकाओं का दल अपनी पीठ पर

पत्तों के खण्ड ओढ़े हुए चलता मिलता था। उसका कुछ रहस्य ज्ञात नहीं होता था। पिपीलिकाएँ दुर्बल नेत्र रखती हैं, इस कारण यह अनुमान होता था कि वे छाया के लिये छाते की भाँति पत्तियों के टुकड़ों का उपयोग करती होंगी। परन्तु सत्य बात दूसरी ही थी।

फफूँद्-उत्पादक पिपीलिकाएँ पैने, कैंचीनुमा संदंश हनु रखती हैं जिससे वे पत्ती का इतना बड़ा टुकड़ा काट लेती हैं जिसे वे ढो ले जा सकें। वे टुकड़े बिल्कुल गोलाकार कटे होते हैं मानो किसी कारीगर ने काटे हों। फफूँद् उत्पादक पत्रकर्तनक पिपीलिकाओं के दल का जलूस दर्शनीय होता है। प्रत्येक पिपीलिका अपनी पीठ पर विचित्र पत्रखण्ड लिये होती है जिसका आकार उनके शरीर के आकार का दुगुना होता है। यदि हम खड़े होकर ऐसा दल देखें तो हमें पिपीलिका को छोटे आकार के कारण देखने का अवसर ही नहीं होगा। हमें केवल पत्तियाँ ही कटे रूप में अपने आप चलती फिरती ज्ञात हो सकती हैं।

फफूँद्-उत्पादक पिपीलिका की रानी अपने गर्भान्वित होने के पश्चात् जब बिल खोद कर छिपने का स्थान बना लेती है तो उसके साथ अन्य रानियों की अपेक्षा एक विशेष सामग्री होती है। वह उसके मुख की विशेष थैली में फफूँद् की सूक्ष्म फाँकी होती है। उसे संसार में कहीं भी अन्यत्र यह फफूँद्-उत्पादक सूत्र प्राप्त नहीं हो सकता था। उसे अंडे देने के साथ ही इस फफूँद् के भी उत्पन्न करने की तुरन्त ही व्यवस्था करनी पड़ती है। बिल का द्वार ऊपर से बन्द कर लिये होती है। एक मात्र यह बन्द कक्ष रहता है। उसी में अंडे देने, फफूँद् उगाने आदि का सब कृत्य पूर्ण करना पड़ता है। वह इनके सूत्र लगाकर उनकी जड़ में अपने अंडे भी चूर्ण कर खाद की भाँति उन पर डाल देती है। अपने

शरीर से निकला एक द्रव भी डालती है। घन्टे-घन्टे पर वह उन्हें आर्द्र करती रहती है।

फफूँद के उगने लग जाने पर ही रानी अन्डे देकर उन्हें विकसित होने का अवसर देती है। अपने अन्डे इन फफूँदों की क्यारी के मध्य ही देती है जिससे इल्लियाँ उत्पन्न होते ही आहार प्राप्त कर सकें। यदि सब व्यवस्था ठीक चले तो चालीस दिनों के अन्दर ही प्रौढ़ पिपीलिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इतनी अवधि तक उसे कहीं से आहार नहीं प्राप्त होता। भूखों मरने का भी अवसर आ जाने तक वह इन फफूँदों का कोई अंश स्वयं नहीं खाती। उसे ज्ञात रहता है कि भावी संतानों का एक मात्र आहार ये ही फफूँद हैं अतएव जब तक बिल का आकार विशाल करने के लिये श्रमिक उत्पन्न न हो जायँ, वे फफूँद की बड़ी क्यारियाँ न उगा लें, तब तक उपनिवेश की नींव बड़े ही दुर्बल आधार पर ही रहती है। अतएव वह फफूँद का एक रेशा भी नहीं छूती। इस सावधानी के लिये वह ऐसा भी कर लेती है कि यदि प्रतिदिन दस अन्डे दे रही हो तो उनमें से नौ अन्डे स्वयं खाकर अपनी जीवन-रक्षा का उद्योग करे और केवल एक अन्डे को ही प्रतिदिन विकसित होने के लिये छोड़े। किसी प्रकार उसे जीवित रहने का उद्योग करना पड़ता है।

श्रमिक पिपीलिका पुष्ट शरीर का हो जाने पर बिल का विस्तार करती है। कवक-वाटिका के लिये एक गज ऊँचा तथा छः गज चौड़ा विवर बना देखा जा सकता है। सरसों के बराबर आकार का मुख रखने वाली पिपीलिका द्वारा इतनी विशाल रचना विस्मय की बात है परन्तु वे कवक-वाटिका ही इतनी बड़ी नहीं बनातीं, नीचे भी अधिक गहराई तक खुदाई कर आवास बनाती हैं जो सत्रह फुट तक गहरा हो सकता है।

एक ओर जहाँ राजगीर गृह-निर्माण में लगे रहते हैं वहाँ दूसरी

ओर पत्रकर्तनक श्रेणी की पिपीलिकाएँ पत्तियों के टुकड़े काटने के लिये बाहर जाती रहती हैं। वे निरन्तर इतना शीघ्र पत्तियाँ काटती जाती हैं कि कुछ समय में ही पूरे वृक्ष तथा पौधे नग्न, पत्र-हीन हो जाते हैं। उधर पत्रखण्ड ढोने वालों के दल निरन्तर बिल में पहुँचते रहते हैं। वहाँ कोई अन्य दल ये पत्रखण्ड लेकर कवक-उत्पादन के लिये चबाने में संलग्न होता है। सबका काम बँटा सा होता है। दीर्घाकार सैनिक द्वार की रक्षा करते है। मध्याकृति पिपीलिकाएँ पत्ते के खण्ड काटती और ढोती हैं। उनसे भी छोटे आकार की श्रमिक पिपीलिकाएँ पत्ते चबाकर लुगदी बनाने का काम करती हैं। उनसे भी क्षुद्रता का कार्य रानी तथा अन्डे बच्चों की सेवा करना होता है। क्षुद्रतम का काम कवक उगाना होता है।

कुछ पिपीलिकाएँ अपनी कवक-वाटिका छत में लटकी उगाती हैं। यह त्रिशुकंवत लटकी वाटिका विचित्र होती है। कुछ की वाटिका नीचे ही होती है। रानी द्वारा दिये अन्डे ला-लाकर श्रमिक पिपीलिकाएँ इन कवकों के मध्य रख दिया करती हैं जिससे वे सहज भोजन पा सकें। इन कवकों की छटनी करते रहने में कुछ श्रमिक सदा ही लगे रहते हैं।

कभी-कभी बाढ़ आने से कवक उत्पादक पिपीलिका का उपनिवेश बह जाता है। परन्तु ऐसी स्थिति में वे बच निकलने का एक विचित्र उद्योग करती हैं। उपनिवेश की सारी पिपीलिकाएँ जुटकर एक भारी गोला बन जाती हैं। उसके भीतर ही सब अन्डे बच्चों रानी आदि को रखकर केन्द्र में कवक की भी कुछ मात्रा रख ली जाती है और कहीं अन्यत्र उपनिवेश बसाने की आशा से वे गेंद रूप में बह निकलती हैं। पिपीलिकाएँ जल के अन्दर भी यथेष्ट समय जीती रह सकती हैं। परन्तु इस विविध गोले के

निम्न भाग की पिपीलिकाएँ बहुत अधिक काल तक जल में डूबी रहने के कारण कहीं मर न जायँ, इस आशंका को मिटाने के लिये वे इस गोले को घुमाती रहती हैं। अतएव कोई भी पिपीलिका बहुत अधिक समय तक पानी में पड़ी रहने के लिये विवश नहीं होती। शुष्क भूमि पर पहुँचते ही गोला टूट जाता है। सारी पिपीलिकाएँ अकस्मात् पृथक-पृथक हो जाती है। रानी भी जीती रहती है। अन्डे बच्चे भी रक्षित रहते हैं। नया उपनिवेश बनने लगता है।

मधुघटीय पिपीलिका

मधुघट की बात तो हम कविता में भी सुनते हैं तथा साधारण वर्णनों में भी उल्लिखित पा सकते हैं। परन्तु हमें जीवित मधुघटों की बात विज्ञान ही बतलाता है। यह जीवित मधुघट क्या हैं, पिपीलिकाओं के उस विशेष उदर का ही परम परिवर्द्धित रूप हैं जो हमें संघीय उदर या समाजोपयोगी उदरकक्ष नाम से ज्ञात है। किसी आवश्यकतावश यह विशेष उदर ही पिपीलिका समाज के मधुभंडार का रूप धारण करता है। जिन जातियों में हम कुछ सदस्यों को स्थायी रूप से अपना संघोदर मधुसंचय के लिए आजीवन प्रदान किया देखते हैं उसे मधुघटीय पिपीलिका नाम देते हैं।

मधुघटीय पिपीलिकाओं का पहले पहल पता कोलोरडो देव घाटी (वैली आफ दी गाड्स) में लगा था। इसी प्रवृत्ति की, किन्तु इतना अधिक विकसित रूप न धारण करने वाली अन्य पिपीलिकाएँ संसार के अन्य भागों में पाई जा सकी हैं। शुद्ध मधुघटीय या सर्वप्रथम ज्ञात मधुघटीय पिपीलिका में अधिकांश श्रमिक पिपीलिकाएँ पूर्णत: साधारण आकार की ही होती हैं। वे बन में से आहार प्राप्त कर कुछ पेट फुलाए बिल में वापस आती हैं, परन्तु असाधारण रूप में उदर फूला नहीं होता। ये काली लम्बोतरी सी होती हैं। इन्हें सर्वभोजी वृत्ति का कहना चाहिए। जब इनका संघोदर विशेष फूलता है तो उदर के कुछ अंग खुल कर उसे बढ़ जाने का अवसर देते हैं।

मिरमेकोसिस्टस नाम की प्रजाति की पिपीलिकाओं में ही एक जाति कोलोरडो में संघोदर का असाधारण रूप धारण करती पाई

गई थी। होर्टस डिओरम नामक स्थल में पहले-पहल उन्हें देखे जाने के कारण उनकी जाति ही इस नाम से पुकारी जाती है। इस जाति में कुछ दर्जनों पिपीलिकाएँ असाधारण वृहद् संघोदर
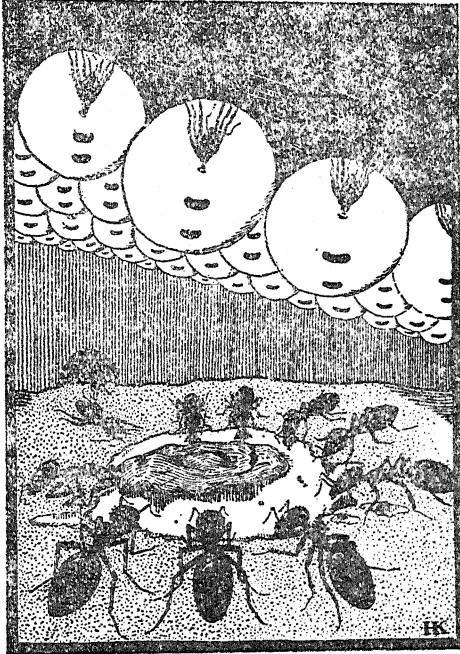
घटोदर पिपीलिकाओं का पेट फट जाने पर अन्य श्रमिक पिपीलिकाएँ मधु-रक्षा की चिन्ता में ही पड़ती हैं।

रखते मिलती हैं। ये बिल के किसी निचले कक्ष में छत से स्थिर रूप में लटकी हुई पड़ी रहती हैं। छत से हट सकने में असहाय होती हैं क्योंकि भूमि पर उनका उदर ही इतना ऊँचा उठा रह

सकता है कि पैर भूमि को स्पर्श न कर सके। अतएव गिर जाने पर ये अपने पैर ऊपर ही नचाती पड़ी रह सकती हैं। जब कभी ऐसी मधुघटीय पिपीलिका का उदर फट जाता है और मधु भूतल पर फैल जाता है तो सजातीय पिपीलिकाएँ यह कहते ही उधर से आ जा सकती हैं कि "सहेली का उदर तो फट गया। परन्तु मधु को बचा लेना चाहिए।" फलतः मधु को अन्य पिपीलिकाएँ पीकर अपने संघोदरों में तो भर लेती हैं, परन्तु उदर के फट जाने से असहाय पड़ी हुई मधुघटीय पिपीलिका की दशा पर कोई तनिक भी दया-दृष्टि दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं समझती। मानो मधु संचित रखना ही उसका अन्तिम जीवन लक्ष्य था। मधु का घट ही फट चुका तो उसके जीवन की क्या आवश्यकता हो सकती है।

मधुघटीय श्रमिक तथा साधारण श्रमिकों की शरीर रचना में कोई भी विशेष अन्तर नहीं होता। बात केवल इतनी होती है कि जातिगत वृत्ति के कारण पिपीलिकाएँ संघोदर से मधु या खाद्यरस को बहिर्मुख कर अन्य के संघोदर में उँडेलने की जो सहज क्रिया करती हैं, उसमें किसी एक को ही अन्य पिपीलिकाएँ अधिक मधु दान करने लगती हैं। इससे धीरे-धीरे उसका संघोदर कुछ बड़ा होने लगता है। अन्य अंग दब कर छोटे होते जाते हैं किन्तु एक बार बढ़ कर उसका छोटा होना सम्भव नहीं होता। धीरे-धीरे संघोदर बहुत ही अधिक बड़ा हो जाता है और उस पिपीलिका का गतिशील अस्तित्व न रह कर केवल एक स्थान पर ही पड़ा रहने वाला किन्तु जीवित रूप रहता है। वह सामाजिक मधुभण्डार हो जाता है जिसमें से आवश्यकतावश समय पर पुनः मधु प्राप्त किया जा सकता है।

मेक्सिको की मिरमैकोसिस्टस मेल्लाइगर दूसरी मधुघटीय

पिपीलिका है जो मूलवासियों को विवाहोत्सव के अवसर पर मनोरंजन के लिए मधु का भण्डार सहज सुलभ कराती है। आस्ट्रेलिया की लेप्टोमिरमेक्स तथा मेलोफोरस जातियाँ भी न्यून विकसित मधुघटीय होती हैं। ये सब शुष्कदेशीय पिपीलिका हैं। जल तथा वर्षा के अभाव वाले स्थानों में ही ये रहती हैं। अतएव इस वृत्ति के कारण सूखे के दिनों में लम्बी अवधि तक जीवित रह सकती हैं।

मधुघटीय होने की घटना अंतर्वृत्ति के कारण ही होती है पहले से कुछ निर्धारित नहीं रहता। उपनिवेश भर की काई भी श्रमिक पिपीलिका मधुघटीय बन सकती है किन्तु कुछ ही मधु-घटीय बनती हैं। संयोग काम करता है। मधु रखने के ऐसे जीवित भांड की न्यूनता है और मधु की सुलभता अधिक है और बाहर से लौटी श्रमिक पिपीलिकाएँ मधु भण्डार के निकट अपने संघोदर का मधु संचय करने के लिए प्रदान करने पहुँची हैं तो किसी भी पिपीलिका को सामने देख उसके उदर में मधु उँडेलने लग सकती हैं। वह भी सहर्ष मधु ग्रहण कर मधुघट बनने के लिए तुरन्त तैयार हो सकती है। ऐसे साधारण रूप से संयोगवश किसी श्रमिक को मधुघटीय बनाया जाता रहता है। जब किसी नूतन मधुघटीय का उदर अधिक फैल जाता है तो वह समाज के लिए अपना स्थिर आसन अधिक उचित समझने और चलने फिरने में अवशता अनुभव करने के कारण छत से लटक कर स्थिर बन जाती है। पूर्व के मधुघटों के साथ यह नवीन जीवित मधुघटों का योग हो सकता है।

मधुघटीय पिपीलिकाओं का बिल उतना बड़ा नहीं होता जितना फफूँद या कवक-उत्पादक पिपीलिकाओं का होता है। परन्तु वे इस बात का अवश्य ध्यान रखती हैं कि कड़ी भूमि में

उनका बिल बना हो अन्यथा नम या भुरभुरी भूमि होने पर उनका मधुभण्डार संचित रखने वाली मधुघटीय पिपीलिकाएँ यदि छत के टूटने से गिर जायँ तो उनका जीवन ही संकटमय हो जाय।
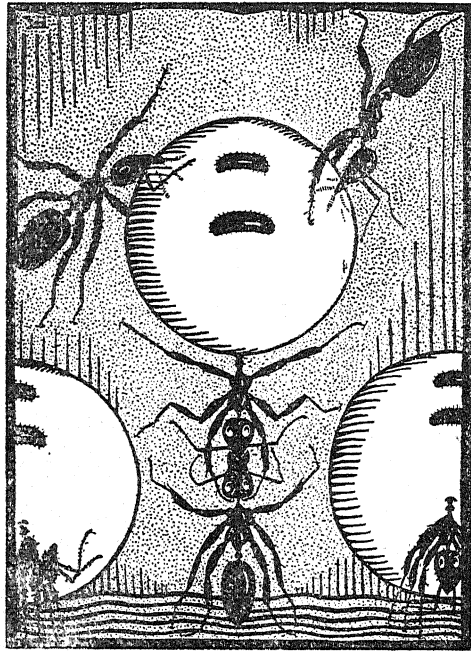
घटोदर पिपीलिकाएँ मधु से उदरघट भर जाने पर सावधानी से छत से लटकाई जाती हैं।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि भूमि दृढ़ होने पर भी निरन्तर लटकी रहने से कोई मधुघटीय अपना संघोदर या मधुघट फटे बिना ही भूमि पर आ गिरी होती है। उस दशा में मधु के उतने

बोझ के साथ उसे किसीप्रकार पुनः छत से लटकाने के लिए उठाया जाता है। यह कितने परिश्रम का कार्य होता होगा।

मधुघटीय पिपीलिकाएँ आजीवन कुछ मधु स्वयं अपने निजी उदर में स्थानान्तरित कर स्वयं आहार करती हैं। शेष मधु अन्य सदस्यों की माँग पर प्रदान करती रहती हैं। कभी उनकी लटके-लटके ही मृत्यु हो जाती है। उस दशा में उसके संघोदर का संचित मधु किसी भी प्रकार प्रयोग में नहीं लाया जाता। स्वच्छता-प्रिय पिपीलिकाएँ जीवित मधुघटों का ही मधु ग्रहण कर सकती हैं। जीवन शेष न रहने पर वे मधु के नष्ट होने का लोभ छोड़कर उस मृत-श्रमिक के सिर और पैर काट कर अलग करती हैं तथा उदर के भण्डार को भूमि पर लुढ़का कर बाहर ले जाती है। कहीं उसे समाधिस्थ कर मधु को भी नष्ट हो जाने देती हैं। रोग उत्पन्न होने का कारण हो सकने की आशंका से ही वे मधु का त्याग करती हैं।

आस्ट्रेलिया के मूलवासी मधुघटीय पिपीलिकाओं को मधुर आहार समझते हैं। मेक्सिको में तो मूलवासी इनके द्वारा मद्य तैयार करते हैं और उसे पीते हैं। उसकी मादकता से उन्मत्त होकर वे आनन्द का अनुभव करते हैं।

जंगमगृही पिपीलिका

जंगम का अर्थ सतत गतिशील या चलते रहने वाला है। खानाबदोश या चलता-फिरता घर रखने वाली पिपीलिका को ही यह नाम दिया गया है। अन्य पिपीलिकाएँ तो कहीं न कहीं घर बना कर एक स्थान पर रहती हैं, परन्तु यह घर कभी नहीं बनाती। सदा घूमती-फिरती ही रहती है। इसकी जाति ही अन्धी होती है। केवल नर के गौण आँखें होती हैं जो पिपीलिका दल का अंग बन कर रहता है। मादा पङ्खहीन होती है। केवल नर ही उड़ सकता है। अतएव प्रथम सुहाग-उड़ान उपहास की ही बात होती है। इस जाति की पिपीलिका को 'जिप्सी' नाम देते हैं। इसकी बड़ी ही लोमहर्षक जीवनकथा है। यह घूमते ही रह कर जहाँ-तहाँ अस्थायी रूप का आश्रय कहीं पत्थरों या लट्ठों के नीचे घोर जंगलों में ग्रहण कर सकती है।

जंगमगृही की रानी का प्रारम्भ से ही निरादर होता है। कोई राजकीय रक्षक या सेवक नहीं होता। जब जातीय दल लम्बी यात्रा पर चलता है तो बेचारी रानी भी घसीट कर साथ ली जाती है। घसीटने से उनका दीर्घकाय उदर छिलकर फफोलों युक्त हो जाता है। रानी के साथ ही दल के साथ अंडे-बच्चे भी ढोये जाते रहते हैं। शिशुओं में कोमल कोए की व्यवस्था नहीं होती। यह जाति बड़ी भयानक, नृशंस होती है। तनिक भी दया किसी के साथ नहीं करती। अन्य बिलों से शिशु चुरा कर जीवित रूप में ही उन्हें राक्षस समान खा जाती है।

जंगमगृही पिपीलिका बड़ी गंधैली होती है। प्रकृति ने कदाचित जान-बूझ कर उसे तीव्र दुर्गन्ध प्रदान की है जिससे अंधी होने के कारण एक दूसरे को तुरन्त पहचान सके। किन्तु रानी तथा नर के शरीर से तीव्र सुगन्ध निकलती है। वह इस पहचान के लिए कदाचित होता है कि ये अपने जनक को अन्य सदस्यों से पृथक पहचान सकें। अन्यथा ये भुक्खड़ जीव उनके भी अंग-भंग कर दें।

जंगमगृही पिपीलिकाओं की अनेक विचित्रताएँ हैं जो अन्य सभी जातियों से विभिन्न होती हैं। इनके घर तो होता ही नहीं, शिशुओं को अन्य कोई खाद्य या मधुपान की आवश्यकता नहीं। जन्म के प्रथम दिन से ही वे कच्चा मांस खाने के लिए पाते हैं। इसीलिए इनकी जाति इतनी दुर्धर्ष होती है। इस जाति की पिपीलिकाएँ न तो कभी अन्न खाती हैं, न दूध-घी पसन्द करती हैं। मुर्दा जीव तो कभी छू भी नहीं सकतीं। परन्तु ताजा मांस भी नहीं खातीं। वे तो सजीव जन्तु के शरीर से ही मांस नोच खाने और उसे केवल कङ्काल रूप में छोड़ने के लिए भूखी रहती हैं। इसी कारण इतनी पिशाचवृत्ति की पिपीलिकाओं को किसी भी नाम से पुकारना पूर्ण अर्थ का द्योतन नहीं कर सकता। इन्हें चंडी, राक्षसी, शैतान आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है।

यदि भीषणता की बात छोड़ दी जाय तो जंगमगृही के कौशल के कितने ही उदाहरण हमें आश्चर्य में डाल सकते हैं। वह घर तो बनाकर एक स्थान पर स्थायी नहीं रहती, परन्तु कहीं वर्षा से रक्षा के लिए आश्रय की आवश्यक पड़ जाय तो ये अपने शरीर को ही जीवित ईंटों सा प्रयुक्त कर सुन्दर गोल तम्बू बना लेती हैं। तम्बू का यह ठोस गोला उनके परस्पर एक दूसरे से चिपक जाने से बन जाता है। ऐसा जान पड़ता है भूरे रेशम से वे सिले पड़े हों। उनके सहस्रों लम्बोतरे पैर उसे एकत्र बाँधे रहते हैं। कभी-कभी ऐसे गोले

एक वन-गज विस्तार के होते हैं। उसमें कितनी अधिक पिपीलिकाएँ होती होंगी। परन्तु यह एक विवेकहीन जमघट नहीं होता। बल्कि इनमें भीतर केन्द्रीय भाग में शिशुओं के लिए कक्ष बना होता है। वहाँ तक जाने के लिए दालानों के रूप में मार्ग बने होते हैं। सेवक पिपीलिकाएँ शिशुओं की देखभाल करने वहाँ आती जाती रहती हैं, भूखे शिशुओं को कच्चा मांस ले जाकर पहुँचाती रहती हैं। जीवित द्वारों, जीवित मधुघटों की आश्चर्यजनक बातें पिपीलिका जगत में सुनाई पड़ती हैं, इन जीवित ईंटों के निर्मित पड़ावों की बात विचित्रता में उन सब से बढ़ कर ही है।

जंगमगृही पिपीलिकाओं का जीवित ईंटों से गोल पड़ाव बना लेना ही उनका सब से आश्चर्य कृत्य नहीं हैं। वे अपने शरीर रूपी ईंटों से पुल भी बना लेती हैं जिस पर से उनके दल की सेना चल कर कोई बाधा पार कर ले जाय। ये पुल पानी के ऊपर बने हो सकते हैं या वृक्ष की एक शाखा से दूसरी शाखा तक लटके हो सकते हैं। यदि कभी सूर्य की कड़ी धूप हो तो मार्ग के ऊपर उससे बचने के लिए मेहराब रूप में भी छाजन-सी बना लेती है जिसके नीचे से इनका दल धूप से बचकर चला जाय। ऊपर की छाजन बनाने में लगी पिपीलिकाएँ धूप की तीव्रता से झुलसती जाती होंगी, परन्तु वे कभी इसका उपालम्भ नहीं देतीं। तम्बू तथा सुरंग की रचना करने से भी विचित्र कार्य उनका लम्बी झूलती हुई रस्सी रूप में बन जाना होता है जो एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक बना होता है। उसे ही नीचे ऊपर आने-जाने के लिए ये मार्ग बनाए होती हैं।

जंगमगृही पिपीलिकाएँ प्रकाश से घृणा करती हैं। अतएव रात में ही इनकी यात्रा होती है। गोधूलि वेला या बदली छाए हुए अँधेरे दिन में भी यात्रा करती हैं। कब चलना है, कब ठहरना है,

इसका कुछ संकेत होता होगा जिसके अनुसार ये गति करती होंगी। यात्रा में रानी अंडों बच्चों के साथ अपने अतिथियों को भी साथ ले चलती हैं।

खानाबदोश कबीलों, बिलोचियों, नटों आदि को हम लोग कहीं एक-दो दिन पड़ाव डाल कर अन्यत्र जाकर रुकने के लिए फिर तैयार देखते हैं। खच्चरों, भैंसों, बैलों, टट्टुओं आदि पर ही उनका खेमा, बिस्तरा, बर्तन आदि का भण्डार लदा होता है। साथ में बच्चे भी लदे हो सकते हैं। किन्तु इन खानाबदोश चींटियों के पास कोई सवारी नहीं होती। पैदल ही यात्रा करती हैं। कोई सामान भी नहीं होता। उनके चलने पर ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई काल नदी यम रूप में फट पड़ी है। भीषण जीवों का यह नद भी यम रूप ही होता है। सारे जंगल की भूमि इनसे आच्छादित तथा आतङ्कित हो उठती है। इनकी अगणित संख्या का दल जङ्गल की छाती पर कभी-कभी अपनी चौड़ाई तेरह फुट रखता है और चार सौ से लेकर चौदहसौ फुट तक लम्बा हो सकता है। कुछ जातियों को ठीक सैनिक सङ्गठन में चलते देखा जाता है। एक-एक पंक्ति में ठीक संख्या होने तथा सभी पंक्तियों के जुटे होने से एक ठोस चटाई का-सा रूप ही बना दिखाई पड़ता है जो आगे लुढ़कता-सा जाता है। अगल-बगल अधिकारी होते हैं जो उनके नियमन तथा अनुशासन के आदेश देते चलते हैं। बड़े सैनिक तथा अधिकारी सदा ही आक्रमण की अग्र पंक्ति में रहते हैं। वे मार्ग-निर्देशन तथा युद्ध का कार्य करते चलते हैं। मध्य में क्षुद्रकाय सैनिक होते हैं जिनके सुपुर्द अंडे-बच्चे होते हैं। बिल्कुल मध्य में रानी के साथ ही नर भी मौजूद रहते हैं।

जिस किसी भी मार्ग से यह राक्षसी पिपीलिका दल जाता है, भीषण वह्नि की भाँति जीव-जगत को पूर्णतया नष्ट करता जाता है।

प्रत्येक पत्ती तथा टहनी की खोज कर के छोटे बड़े सभी जन्तु खा जाते हैं। मार्ग में पड़े किसी भी पिपीलिका के बिल को सूना कर देते हैं। मार्ग में जलपान करने के लिए भी शिशुओं को साथ बाँध लेते हैं। इनके आगमन की अग्र सूचना आकाश में व्यग्रतापूर्वक पक्षियों के चहचहा उठने से मिलती है। कोई भी जन्तु भूमि या वृक्ष पर बैठा रह कर इनके मार्ग में पड़ने पर जीता नहीं रह सकता। केवल मकड़ा कहीं जाल से लटका रह कर ही बच सकता है। शेर, चीते तक भी किसी कारण भाग सकने में असमर्थ हों तो इनके द्वारा खा लिए जा सकते हैं। यही दशा अन्य पशुओं, मनुष्यों तक की हो सकती हैं। कोई गाँव मार्ग में पड़ जाय तो अग्र सूचना से वहाँ के निवासी पालतू-पशुओं को लेकर चुपचाप कहीं हट जाते हैं। दल के निकल जाने पर वे लौट आते हैं। इन राक्षसी पिपीलिकाओं द्वारा कोई अन्य खाद्य द्रव्य नहीं खाया जाता। यह लाभ ही होता है कि सभी कीट, मच्छड़, पिस्सू आदि इनके द्वारा भक्षण कर लिए जाते हैं।

कदाचित इन भयानक पिपीलिकाओं का दल जङ्गल में खुला छोड़ देने में प्रकृति का उद्देश्य यह ही होता है कि जो अगणित कीट, जन्तु असीम वृद्धि करते जा रहे हैं उनकी मृत्यु इनके द्वारा सहज ही हो जाय और पृथ्वी का बढ़ता भार कुछ हल्का होकर रहे। अन्यथा इन सर्वनाशी पिपीलिकाओं की दूसरी क्या आवश्यकता है!

गोपालक पिपीलिकाएँ

पिपीलिकाएँ किसी जन्तु को अपनी गाय सी मान कर पालती, चराती तथा उनसे दूध-सा रस प्राप्त करती हैं। ये एफिड कीट कीटधेनु नाम से पुकारे जा सकते हैं। वे पिपीलिकाओं के आग्रह पर एक प्रकार का रस निःसृत करते हैं जो पिपीलिकाओं को मधुर खाद्य-रस या दुग्ध सदृश पेय होता है। पिपीलिकाएँ अन्य भी कीट पोषित करती हैं किन्तु कीटधेनु या पिपीलिकाधेनु उन सब में महत्वपूर्ण होते हैं। मनुष्य की दृष्टि से वे कीट अधमतम हैं जो गुलाब की पंखुड़ियाँ या अन्य वनस्पति नष्ट करते हैं। यदि पिपीलिका की दृष्टि से देखा जाय तो वह तो यही समझती होगी कि गुलाब की क्यारियाँ उनकी गायों के लिए ही लगाई गई हैं।

पिपीलिका की गाय बनने वाले अनेक प्रकार के कीट होते हैं, हरी मक्खी, काली मक्खी, अन्य एफिड और काक्सिड (शल्कीय कीट) आदि पिपीलिका-धेनु बनते हैं। वे चरने के लिए बाहर ले जाए जाते हैं और पुनः गृह के आश्रयस्थल में वापस लाए जाते हैं। उनकी वहाँ पूरी रक्षा होती है। पिपीलिका-गृह के अन्दर उनके लिए विशेष विश्रामगृह बने होते हैं। बिल में उनके अण्डों की बड़ी सावधानी से सेवा-सुश्रूषा होती है। बिल के अन्दर ही रहने की वृत्ति वाली पिपीलिकाधेनुओं को बिल के आसपास घासों की जड़ चरने दिया जाता है। ऐसी जातियों की पिपीलिकाएँ कभी बिल के बाहर नहीं आतीं।

कीटधेनुओं से पिपीलिकाएँ जो दूध प्राप्त करती हैं, वह उनका निःसृत एक द्रव होता है। जब पिपीलिका द्वारा पोषित नहीं होती हैं तो साधारण रूप में जब तब वे ऐसा रस बाहर फेंकती रहती हैं किन्तु पिपीलिकाओं द्वारा पोषित होने पर वे उनकी माँग पर ही यह रस निःसृत करती हैं। दूध दूहने की एक विचित्र विधि

कीटधेनु को पीछे से थपथपा कर पिपीलिकाएँ दूहती हैं।

है। उसे पिपीलिका अपनी संवेदनशील मूछ से धीरे-धीरे ठोकती है। कुछ सेकंडों में ही वे प्रसन्न से होकर यह मधुरस निःसृत कर

देते हैं। एफिड कीटों में उदर के पिछले भाग में बाहर निकले तथा थोड़ा सा ऊपर उठे दो अंकुशों के द्वारा ही यह मधुरस स्रवित होता है। जो पिपीलिका दूध दूहती होती है, वह इस मधुरस की बूँद बाहर होते ही तुरन्त चाट लेती हैं। कुछ देर और ठोकती रहकर वह देख लेती है कि अधिक मधुरस प्राप्त हो सकता है। फिर एक के बाद दूसरे कीटधेनु के पास दूध दुहने पहुँचती हैं।

पिपीलिका-धेनु कोमल शरीर के हरे रंग के कीट होते हैं, जिनकी पीठ पर दो सींगें होती हैं, तथा सिर पर दो संवेदनशील सूत्र होते हैं। उनके पैर पतले होते हैं। कदाचित वे पक्षियों, कीटों आदि अनेक शत्रुओं से जान बचाने के लिए दौड़ते रहते हैं। इसी कारण उनके पैर लम्बे हो गए हैं। जो पिपीलिकाधेनु भूतल के स्थान पर भूगर्भ में रहती है, उसके पैर छोटे तथा मोटे होते हैं।

एफिड या वनस्पतिरस-चूषक कीट एक लम्बी पुष्ट चंचु रखते हैं। वह एक छोटे पंप सा ही होता है जिससे वे वह रस वनस्पतियों के अंतस्तल से चूस लेते हैं जिसका उन्होंने अपने भोजन के लिए निर्माण तथा संचय किया होता है। किन्तु कीट ही क्या, हम भी तो अपनी जीभ को सुस्वादु लगने योग्य वनस्पतियों का रस पान करने से नहीं चूकते। गन्ना तो अपने अंतराल का रस ही देकर हमारे गुड़ तथा शर्करा व्यवसाय को खड़ा होने देता है। हमें जीने के लिए ही नहीं, बल्कि स्वाद के लिए गन्ने या अन्य वनस्पतियों का कलेवर चीरना पड़ता है। अतएव अपनी जीवन-रक्षा के लिए एफिडों का वनस्पति-रस चूसने का कृत्य क्षम्य है।

बलूत या फनाट वृक्ष पर चरने के लिए अपने धेनु कुछ पिपीलिकाएँ ले जाती हैं। उनकी विचित्र कहानी है। ऊपर चढ़ने और उतरने के लिए पृथक-पृथक मार्ग होते हैं। एक मार्ग केवल चढ़ने

के लिए ही होता है और दूसरा केवल उतरने के लिए। जब दूध दूहने के लिए एक मार्ग से पिपीलिका ऊपर पहुँचती हैं तो वे सब कीटधेनुओं से दूध प्राप्त करती और अपने संघोदर रूप की वाल्टी में रखती जाती हैं। एक-एक पिपीलिकाधेनु चौबीस घंटों में उन्नीस बूँद तक मधुरस प्रदान कर सकती है। कभी इनकी इच्छा दूध न भी देने की होती है। उस समय वे अपने पिछले पैरों से दुलत्ती मारती है और मधुरस को रासायनिक शास्त्र की भाँति फुहार रूप में पिपीलिका के ऊपर फेंकती है। वह मधुरस व्यर्थ हो जाता है।

जब कई धेनुओं से मधुरस या दूध लेकर पिपीलिकाएँ अपने संघोदर में भर लेती है तो उनका पेट बड़ा वृहद् हो जाता है। वे कठिनाई से ही उतरने के मार्ग से नीचे उतरने लगती है। उनको वृक्ष पर चढ़ने में तो कठिनाई न हुई होगी। परन्तु उतरने में भारी कठिनाई अनुभव होती है। ऊपर चढ़ने के मार्ग से जाती हुई पिपीलिकाओं, को जिस आकार का देखा जा सकता है, उनकी अपेक्षा इन उतरने वाली पिपीलिकाओं का रूप तो इतना विभिन्न ज्ञात होता है कि ये दूसरी जाति की ही ज्ञात होती हैं। नीचे आने पर बिल के निकट उनकी अन्य सहेलियाँ उनके संघोदर के भार को हल्का करने के लिए लालायित ही खड़ी रहती हैं। वे अपने खाली संघोदर में सहज ही यथेष्ट मात्रा लेकर बोझ बँटा ही नहीं सकतीं, प्रत्युत स्वयं भी अपने तथा अपनी जाति के आहार से सम्पन्न होकर एक आनन्द का अनुभव करती हैं। बोझा हल्का करने की इच्छा न रहने पर भी भूखी पिपीलिकाओं का दूध दुह कर आहार-रस या मधुरस से पूरित उदर की पिपीलिकाओं को घेर लेना स्वाभाविक ही हो सकता है। वे सब ही इस आहार के लिए व्यग्रता से प्रतीक्षा ही करती खड़ी रहती हैं।

कुछ पिपीलिकाएँ अपनी धेनुओं का विश्रामगृह बड़ा सुन्दर बनाती है। पत्रगृही या मटा पिपीलिका वृक्षों पर निवास करने वाली है जो पत्रगृह बनाने में पत्तों को सीने के लिए अपनी इल्लियों से ही तागे सुई तथा ढरकी का काम लेती है। वह अपनी धेनुओं के लिए कोमलतम रेशम का गृह बनाती है। वहाँ तक जाने के लिए छाजन युक्त मार्ग बने होते हैं जिससे धूप तथा वर्षा से रक्षित रह कर वे धेनु तथा चरवाहा पिपीलिकाएँ आ-जा सकें। रेशम के घर में रहना किस धेनु को प्रसन्नता की बात नहीं ज्ञात हो सकती। किन्तु पिपीलिकाधेनुओं के जीवन में कोई उतार-चढ़ाव नहीं होता। दूसरे के वश में रह कर केवल पत्र या वनस्पति रस चूसना तथा उससे दूध बना कर दूसरे को देते रहना ही उनका जीवन रह जाता है।

युद्धप्रिय पिपीलिकाएँ

संसार के राष्ट्र अपनी रक्षा या आक्रामक वृत्ति के कारण सेना रखते हैं। कीट जगत में भी पिपीलिकाओं को सेना से सज्जित पाया जा सकता है। जिन जातियों को अपने दैनिक जीवन की आवश्यकता के लिए अन्य पिपीलिकाओं या जन्तुओं से 'युद्ध करना पड़ सकता है, वे पिपीलिकाएँ अपनी सेना रखती हैं। यह कोई कृत्रिम व्यवस्था नहीं होती, बल्कि युद्ध करने के लिए विशेष रूप धारण करने वाली पिपीलिकाएँ सैनिक बाने में जन्म ही धारण करती हैं। जो पिपीलिकाएँ मांसाहारी हैं या दास-वृत्ति की प्रथा अनुसरण करती हैं, मांस रूप में अन्य पिपीलिकाओं के अंडे बच्चे या दास रूप में प्रौढ़ बनने ही वाले किन्तु शिशु रूपधारी प्यूपा (कोयाधारी इल्ली) पकड़ लाने के लिए अन्य बिलों पर आक्रमण करने का उपक्रम करना पड़ता है। इसी कारण उनकी जातियों में विशेष रूपधारी सैनिक होते हैं। सैनिकों का रूप कुछ विचित्र होता है, आकार भी श्रमिकों से बड़ा होता है। सिर का आकार शरीर के अनुपात से बड़ा ही नहीं प्रत्युत अवशिष्ट शरीर से भी बड़ा हो सकता है। इतनी भारी सन्दूक रूप के मुख के उलट जाने पर वे बेचारे उठ नहीं सकते। भूमि पर उल्टे शरीर के बल पैर 'हिलाते-हिलाते ही उनका प्राणान्त भी हो जाता है।

सैनिक पिपीलिका का मुख बेतुका भारी होकर भी बड़ा प्रबल अस्त्र होता है। तलवार, संगीन, भाला, बर्छा, जो कुछ भी कहिए,

पिपीलिका के लिए वही सब कुछ हथियार होता है। कीटों में डङ्क भी होता है जिससे वे अपने शरीर के पिछले भाग की छोर पर लगी सुई से दूसरे के शरीर में छेद कर देते हैं तथा उसमें कुछ विष भी प्रविष्ट कर देते हैं। छोटे कीटों के लिए तो ये विष ही मूर्च्छा या मृत्यु उपस्थित करने के लिए पर्याप्त होते हैं। पिपीलिकाओं में भी ऐसा डङ्क होता है किन्तु हम कुछ जातियों में डङ्क की सुई की जगह पर कोई विष फेकने की पिचकारी सी पाते हैं। वह रासायनिक अस्त्र का प्रहार करने का आधार कहा जा सकता है। सँडसीनुमा जबड़ों (संदंश मुख) की छोर से काट कर वे उसमें डङ्क द्वारा विष प्रविष्ट कर सकते हैं। केवल फुहार रूप में भी छोड़ना सम्भव है। पिपीलिकाएँ इन विधियों से शत्रु को पराभूत करने में अनेक बार सफल हो जाती हैं। कभी-कभी उनके डङ्क रूप की पिचकारी से छोड़ा विष (फार्मिक ऐसिड) तो हमें स्वयं भी देख सकने का अवसर मिलता है। कभी-कभी तीव्र गंध की वस्तु भी प्रसारित कर वे शत्रु को अंधा तथा त्रस्त बना सकती हैं। इस तरह हमें इन छोटे आकार के जन्तुओं में भी युद्ध कला रूप में रासायनिक पदार्थों के प्रयोग की सीमित क्रियाशीलता देखने को मिलती है।

कभी-कभी एक जाति के ही दो पड़ोसी कुलों की पिपीलिकाओं को भी लड़ता देखा जाता है। उनके उपनिवेशों के मध्य कुछ आहार प्राप्त करने का उभयपक्षीय क्षेत्र हो सकता है जहाँ दोनों कुलों की पिपीलिकाएं परस्पर मिलने का अवसर पाती हैं। हमारे घरेलू या पड़ोस के झगड़ों की भाँति उन कुलों के दो साधारण सदस्यों में ही कोई बात लेकर झगड़ा खड़ा हो सकता है जो दोनों उपनिवेशों के मध्य भारी वितंडावाद में परिवर्तित हो सकता है। पिपीलिकाओं से अधिक कोई भी अन्य कीट या जन्तु शीघ्र उत्तेजना

पूर्ण होने की वृत्ति नहीं रखता। वे खूसट विधवाओं की तरह तुरन्त जूझ पड़ती हैं।

एक बार दो विभिन्न कुलों के सदस्यों में झगड़ा प्रारम्भ न हुआ कि सारा दल टूट पड़ता है। दूसरे पक्ष से भी इस ललकार का समुचित उत्तर मिलने पर तुरन्त ही घोर युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। सारा जंगल उत्तेजनामय हो जाता है। दोनों विवरों से पिपी-लिकाओं का दल जुटता जाता है। हजारों लाखों पिपीलिकाएँ सन्ध्या तक कटती-मरती रह सकती हैं। किसी एक पक्ष की विजय दुर्लभ ही होती है। उस क्षेत्र भर में भी युद्ध की उत्तेजना फैल चुकी होती है। अन्य दो कुलों में पृथक रूप से ही किसी अन्य कारण से उसी समय युद्ध ठना पाया जा सकता है। दो पक्षों के युद्ध में जो पक्ष कुछ भू-भाग अधिकृत कर चुका रहता है वह मृतकों को हटाता है। उनके शरीर के खाद्य अंगों को भक्षण कर ऊपरी खाल, सिर वक्ष तथा आमाशय तथा पैर की ठठरी फेंक देता है। सप्ताहों तक दोनों पक्ष के क्षेत्र की सीमा पर भारी पहर रहता है। कोई युद्ध नहीं होता। बीच में कुछ क्षेत्र उदासीन रूप का छोड़ दिया जाता है। ऐसे युद्ध एक जाति के जिन दो कुलों या उपनिवेशों में हुए रहते हैं, वे अब पूर्णतः ही एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं।

अन्य जातियों के साथ युद्ध में फीडोल पिपीलिका का एक उदाहरण लिया जा सकता है। इस जाति की पिपीलिका में दीर्घ सैनिक बिल के अन्दर बेकार, निठल्ले से घूमते रहते हैं। किसी समय अकस्मात उत्तेजना का भाव सजातीय पिपीलिकाओं में पाकर वे बाहर निकल पड़ते हैं। इनमें जागृति आ जाती है। वे जबड़े खोलकर दौड़ पड़ते हैं। कोई भी शत्रु सच्चा या झूठा हो ये उसे मुख की चपेट में लेने का उद्योग करने लगते हैं। अब उनमें तनिक भी आलस्य, निठल्लापन नहीं रह जाता। उत्तेजना शान्त

होने पर वे पुनः बिल में चले आते हैं। दो पिपीलिकाओं के युद्ध में एक दल की पिपीलिकाएँ अपने पक्ष की पिपीलिका के पैर से दो-दो, तीन-तीन की संख्या में चिपक सकती हैं जिससे वह उलटने न पावे। कोई अन्य सहायक पिपीलिका प्रत्यक्ष रूप से युद्ध में भी अग्रसर होकर शत्रु पिपीलिका को पछाड़ने में मदद करती है।

पिपीलिकाओं के युद्ध की वास्तविक कहानी पंक्ति बनाकर दल रूप में अन्य जातियों पर आक्रमण करने की है। हमें अपने सैनिक

चित्र ११—दलपति आदेश पर पिपीलिकाओं का दल कहीं टीले पर आक्रमण करने जाता है।

लिखाकर तैयार करने में वर्षों लग जाते हैं। परन्तु पिपीलिकाओं में जन्मजात ही सैनिक होते हैं। उन्हें अन्तःवृत्ति से ही युद्ध कला ज्ञात होती है। अनुशासन का ज्ञान होता है। प्यूपा रूप में काया-

पलटकर कोये से बाहर निकलते ही वे सधे हुए सैनिक होते हैं। वे सैनिक पिपीलिकाएँ इस प्रकार पंक्ति बना लेती हैं मानो किसी एक सीधे तार में मनिया पिरोई गई है। अतएव इनकी पंक्तिवद्ध संगठित दल शीघ्रता से चल सकता है।

जब मांसभक्षी पिपीलिका दल को खाद्य की न्यूनता अनुभव होती है तो उसके गुप्तचर या अन्वेषक गण आस-पास की भूमि में अन्य बिलों की खोज करने तथा स्थिति का पता लगाने भेजे जाते हैं। कभी-कभी सप्ताहों इस टोह में लग जाते हैं। फिर इनका ऋतु-विशेषज्ञ बतलाता है कि ऋतु अनुकूल है, वर्षा होने की सम्भावना नहीं है जिसमें बहुसंख्यक पिपीलिकाएँ नष्ट होने की आशंका जाती रहती हैं और ठीक आक्रमण प्रारम्भ हो जाता है। सेना का संगठन चार से लेकर छः या आठ की पंक्ति में होता है। वह दल निकटतम मार्ग से जाता है किन्तु युद्ध समाप्त होने पर अव्यवस्थित रूप में मनमाने ढंग तथा मार्ग से लौटता है। लूट का माल तथा अपने हताहतों को ढो लाता है। युद्ध के दूसरे दिन उनके घूरे पर शवों की भारी ढेरी लगी होती है। शत्रु पिपी-लिकाओं की खोपड़ियों से वह भरा होता है। पता नहीं, किस भावना से वे इनको वहाँ ला पटकते हैं। युद्ध की स्मृति घूरे पर लाये इन कपालों द्वारा ही नहीं होती। युद्ध-स्थल में भी विचित्र दृश्य देखा जा सकता है। कहीं पर दो पिपीलिकाएँ एक दूसरे से भिड़ी पड़ी हैं। पैर टूट गये हैं। संवेदनशील मूछें लुप्त हो गई हैं किन्तु वे जूझी ही पड़ी हैं। उन्हें यह भी पता नहीं कि युद्ध समाप्त हो गया है और दल अपने बिलों में चले गये हैं।

बिलों पर आक्रमण करने पर प्रहरी तथा रक्षकों के मार डालने पर भीतर किस तरह युद्ध होता है, यह बता सकना कठिन है। किन्तु आक्रामकों का उद्देश्य शत्रु के अंडे-बच्चे उठा ले जाना रहता है

अतएव आगे-पीछे, दायें-बायें मिलने वाले शत्रुओं को लेकर वह लूट का माल लेकर भाग चलते होंगे। उधर शिशुओं की रक्षक और पोषक पिपीलिकाएँ भूशायी ही पड़ी रह जाती होंगी। यदि केवल दास बनाने के लिए ही शिशुओं की लूट की जाती होगी तो शत्रु दल की रानी तथा सेविकाओं को मृत न किया जाता होगा क्योंकि उनके जीवित रहने से भविष्य में भी दास प्राप्त हो सकते हैं। दासों के प्राप्त करने के उद्देश्य से हुए युद्ध में रक्तपात भी अधिक न होता होगा। यदि रानी के मृत हो जाने पर इस विजित दल में कहीं लुकी-छिपी कुछ पिपीलिकाएँ रह भी गई हों तो जीवन की आवश्यकता नहीं समझतीं। उनका साहस टूट चुका होता है। नव-संतान नहीं हो सकती। अतएव उपनिवेश समाप्त हो जाता है।

चींटी-विज्ञान के साधक

चींटी विज्ञान का अर्थ चींटी-चींटों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना है। जन्तुओं के क्षुद्रतम आकार का उदाहरण देने में चींटी का नाम स्वतः ही हमारी जीभ पर आ जाता है परन्तु क्षुद्र-काय होने से ही यह हीनतम जन्तु नहीं कहा जा सकता। आज तो चींटियों तथा अन्य कीटों के सम्बन्ध में कितनी ही जानकारी प्राप्त की जा सकी है, परन्तु वैज्ञानिक शोध के रूप में चींटियों के जीवन-क्रम का अध्ययन करने के लिए कभी भी प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता प्रदान किए जाने की बात नहीं सुनी जाती। चींटी विज्ञान के शोध कार्य को अपने सारे जीवन का धंधा बनाने वाला संसार भर में एक ही शोधकर्त्ता आज तक हो सका है। यह विद्वान संयुक्त राज्य अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय का कीट विज्ञान का प्रधान आचार्य है। कुल चार दर्जन पुस्तकें ही चींटी विज्ञान के सम्बन्ध में छपी होंगी। उनमें कितने ही शोधकर्त्ताओं के परिश्रम का फल लिपिबद्ध पाया जाता है। चींटी विज्ञान के कुछ प्रसिद्धतम शोधक को तो विज्ञान-जगत जानता भी नहीं। उनमें कितने ही तो अन्य क्षेत्रों में ही प्रसिद्धि पा सके हैं। इनमें एक तो इस्पात्-निर्माण की वर्तमान विधि ज्ञात करने के लिए प्रसिद्ध है।

चींटी विज्ञान का एक सबसे प्रसिद्ध शोधकर्त्ता जीसट पुरोहित था। एक दूसरा व्यक्ति मानसिक विज्ञान का आचार्य था। इङ्गलैंड के गिरिजाघर के दो पादरी भी इसके लिए यशस्वी हैं। एक इञ्जी-नियर ने चींटियों के शरीर विज्ञान की पुस्तक सबसे पूर्व रचित की

थी। संसार में प्रसिद्ध रूप के चींटी-विज्ञान शोधक पाँच महानुभाव कहे जा सकते हैं। उनके नाम निम्न हैं :—

(१) स्विट्जरलैंड के आगस्टी फोरेल (मानसिक विज्ञान के आचार्य) (२) संयुक्त राज्य, अमेरिका के विलियम मार्टन ह्वीलर (हारवर्ड में कीट विज्ञान के आचार्य) (३) नीदरलैंड के एरिक बाजमैन (ईसाई जीसट पुरोहित) (४) इटली के कार्लो एमरी तथा (५) इङ्गलैंड के होरेस डोनिसथार्पी।

इन पाँचों विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तथा वर्तमान सदी के पूर्वार्द्ध में कार्य किया और चींटियों के जीवन-क्रम के सम्बन्ध में हमारे सम्मुख क्रान्तिकारी अभिज्ञता प्रस्तुत की। चींटी-चींटे के स्वभाव, शरीर विज्ञान, श्रेणी विभाग आदि के संबंध में प्रचुर साहित्य संसार के सम्मुख उन्होंने रक्खा। इन पाँचों शोध-कर्ताओं को पूर्ववर्ती शोधकर्त्ताओं के कार्य से अनुप्रेरणा अवश्य प्राप्त हुई थी। इस प्रकार चींटी-विज्ञान के शोध की कथा इनके भी पूर्व से प्रारंभ होती है।

प्राचीन शोधकर्त्ताओं में रेनी ऐंटोयनी फेर्शाल्ट डी र्‌यूमुर का नाम सबसे पहले लिया जाना चाहिए। यही सर्वप्रथम अभूतपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति था जिसने आधुनिक पिपीलिका विज्ञान का शिलान्यास किया। इसका जन्म १६८३ ई० में फ्रांस के ला रोशेली नामक स्थान में चौदहवें लुई के राजत्वकाल में हुआ था। यह नगर के एक उच्च न्यायाधीश का पुत्र था। इसी ने इस्पात् बनाने के आधुनिक साधन की खोज की थी। इसी ने यह भी ज्ञात किया था कि पक्षी अपने उदर में कंकड़ियाँ घोंटकर किस प्रकार भोजन को पचने के लिए मर्दित करने की क्रिया करते हैं। उसने तापमापक यन्त्र का भी आविष्कार किया था जो आज भी उसके नाम से प्रसिद्ध है। उसने तो मकड़ी के जाले का भी कुछ व्यावसायिक

उपयोग भी ज्ञात करने का प्रयत्न किया था। उसकी मृत्यु के समय तक उसकी लिखी पांडुलिपियों का भारी पोथा संचित हो गया था जिसमें छः जिल्दों में "कीटों का इतिहास" १७३४-४२ में प्रकाशित हुआ। चींटी-विज्ञान से सम्बन्धित एक सबसे महत्वपूर्ण पांडुलिपि १८२ वर्षों तक अप्रकाशित ही पड़ी रही। इस पुस्तक का नाम "चींटियों का जीवन-इतिहास" था। यद्यपि यह पुस्तक १७४२-४३ में लिखी गई थी, तथापि यह उसके जीवन काल भर में प्रकाशित न हो सकी। उसकी मृत्यु के पश्चात् यह अन्य कागजों की ढेर में एक संस्था में कूड़े की तरह फेंकी पड़ी रही। अन्त में ह्वीलर नाम के चींटी-विज्ञान विशेषज्ञ ने इसे १९२५ ई० में ढूँढ़ निकाला और अगले वर्ष ही प्रकाशित कराया।

र्‌यूमुर ने अपनी इस पुस्तक में चींटियों के सम्बन्ध में प्राचीन भ्रान्त कथाओं को निर्मूल प्रकट कर अपने देश में पर्यवेक्षण द्वारा ज्ञात तथ्यों को चींटियों के सम्बन्ध में उल्लिखित किया है। र्‌यूमुर ने बहुत सी भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल प्रकट करने प्रयत्न जिस पांडुलिपि में किया उसके पौने दो सौ वर्षों तक प्रकाशित न होने पर भी अन्य वैज्ञानिकों में उन तथ्यों का प्रचार हो चुका था। इसका कारण र्‌यूमुर का एक शिष्य चार्ल्स बोनेट (१७२०-९३) तथा फ्रांकायज ह्यूबर (१७५०-१८३१) नामक एक अंधा व्यक्ति था जो मधुमक्खिका विज्ञान से रुचि रखता था किन्तु उसे बोनेट द्वारा चींटी-विज्ञान के सम्बन्ध में र्‌यूमुर के कार्यों का पता लगा था। कदाचित उसने तथा ल्योनेट नाक के एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने र्‌यूमुर चींटी विज्ञान वाली पुस्तक का कुछ अंश देखा भी था।

बात कुछ भी हो, परन्तु कदाचित अंशतः इस पुस्तक तथा स्वयं बोनेट द्वारा उत्प्रेरणा प्राप्त कर फ्रांकायज ह्यूबर ने अपने पुत्र पियर्रे को चींटी-विज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त किया। पियर्रे को

तनिक अनुप्रेरणा की ही आवश्यकता थी। सन् १८१० में ३३ वर्ष की अवस्था में चींटी-विज्ञान की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक "देशी पिपीलिकाओं के जीवन-इतिहास की शोध" प्रकाशित की। इसका अंग्रेजी अनुवाद दस वर्षों बाद प्रकाशित हुआ। इसे वैज्ञानिकों ने "पिपीलिका-विज्ञान का वेद" ही घोषित किया है। पियर्रे ह्यूबर ने अपनी इस पुस्तक की भूमिका में निम्न उद्‌गार प्रकट किए हैं जो उल्लेखनीय हैं :—"अभी तक निर्णीत न हो सकने वाली समस्यायें अनन्त हैं। फिर भी हमारे लिए यह अवसर है कि इस विषय के सम्बन्ध में जो बहुत सी गुत्थियाँ हमारे पूर्वजों ने बिना सुलझाए ही छोड़ रक्खी हैं उनका निराकरण कर इस विज्ञान की कथा संभव होने पर एक अधिक दृढ़ तथा पुष्ट आधार पर प्रस्तुत की जाय।" इन उद्‌गारों की पूर्ति करने में भी पियर्रे ह्यूबर को अवश्य ही सफलता प्राप्त हुई। उसने अपनी पुस्तक के प्रकाशन के दिन चींटी-विज्ञान को जिस दृढ़ आधार पर रक्खा, उसी पर यह विज्ञान आज भी स्थित है। पियर्रे ह्यूबर ने ही पहले-पहल आमेजन पिपीलिका (पोलिएर्गस रुफेसिन्स) तथा शोणितरक्त दासपोषक पिपीलिका (फोर्मिका सैंग्विनिया) के दास-पिपीलिकाएँ प्राप्त करने से आक्रमणों का उल्लेख किया। उसी ने नर-मादा पिपीलिकाओं के केवल एक दिन उड़कर सुहाग-उड़ान का कृत्य पूर्णकर संतान-जनन के लिए गर्भस्थापन करने तथा नव उपनिवेश स्थापन का वर्णन किया। उसी ने पहले-पहल कीट या पिपीलिकाधेनु के पिपीलिकाओं द्वारा पाले जाने तथा उसके शरीर से विसृत रस प्राप्त करने का विशद वर्णन किया। पिपीलिकाओं के संघवद्ध जीवन का यथार्थ चित्रण उसी ने पहले-पहल किया।

पियर्रे ह्यूबर के जीवन के संबंध में अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। केवल इतना ही ज्ञात है कि आगस्टी फोरेल नामक प्रसिद्ध चींटी-

विज्ञान वेत्ता की दादी का वह आत्मीय था। इस सम्बन्ध का ही यह प्रत्यक्ष परिणाम था कि आगस्टी फोरेल चींटी-विज्ञान के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ लन्दन से १६२७ में प्रकाशित अपनी पुस्तक "पिपीलिकाओं को संघ बद्ध जगत" में लेखक ने स्वयं लिखा है, "एक स्मरणीय दिवस पर मेरी दादी ने मुझे १८१० में जेनेवा से प्रकाशित "देशी पिपीलिकाओं के जीवन इतिहास की शोध" नामक पुस्तक लाकर मुझे दी। लेखक ने वह पुस्तक उसे समर्पित की थी। उसने मुझ से कहा, "मैं यह पुस्तक तुम्हें भेंट करूँगी जो मेरे आत्मीय ह्यूबर.ने लिखी है। वह तुम्हारी तरह निर्दय नहीं था। जब अपना मुरब्बा खाने वाले चींटों को मैं मारती तो वह मेरी भर्त्सना करता। मैं इस पुस्तक को पढ़ नहीं सकी हूँ। मेरे पढ़ सकने योग्य नहीं है।"

फोरेल तो ह्यूबर्ट की पुस्तक पाते ही उसे चाट गया तथा पिपीलिकाओं के जीवन का पर्यवेक्षण करने में संलग्न हो गया। जेनेवा झील के निकट उसके माता-पिता रहते थे। अतएव उसके तट पर पिपीलिकाओं का भली-भाँति पर्यवेक्षण करता। वह चिकित्सा विज्ञान का छात्र रहते हुए ही इक्कीस वर्ष की अवस्था में सन् १८६६ ई० में पिपीलिका विज्ञान पर एक शोध लेख प्रकाशित करा सका। छः वर्षों पश्चात् उसने पिपीलिका विज्ञान की अपनी प्रामाणिक पुस्तक "स्विट्ज़रलैंड की पिपीलिकाएँ" प्रकाशित करवाई। वृद्धावस्था पहुँच सकने पर ही उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "पिपीलिकाओं का संघबद्ध जगत" पाँच जिल्दों में प्रकाशित हो सकी। इनमें अन्तिम जिल्द सन् १६२३ में प्रकाशित हो सकने तक उसकी आयु ७५ वर्ष की हो गई थी। वैज्ञानिक पत्रों में उसने सारे जीवन में प्राय: ५०० शोध-लेख प्रकाशित कराये थे।

आगस्टी फोरेल एक कुशाग्र दयार्द्र पुरुष था। उसमें एक वैज्ञा-

निक तथा एक नीतिशास्त्री का विचित्र मिश्रण था। उसने पिपीलिकाओं के श्रेणीविभाग में विशद उन्नति कर हमारे पिपीलिका-ज्ञान में भारी वृद्धि की। सैकड़ों नई जातियों की पिपीलिकाओं का उसने वर्णन किया तथा नामकरण किया। चिकित्सा-शास्त्र का छात्र होने के कारण इसने स्नायु-विज्ञान तथा मानसिक विज्ञान की विशेष जानकारी प्राप्त की। वह पिपीलिकाओं के शरीर विज्ञान, स्नायु-रचना तथा जीवन-क्रम के सम्बन्ध में अत्यधिक रुचि रखता था।

पिपीलिका विज्ञान के पाँच महारथियों की रचनाएँ पढ़ने वाले पाठक उनके विचारों में परस्पर घोर विरोध तथा एक दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना देखकर कुछ विस्मित हो सकते हैं। पियरें ह्यूबर ने ह्वीलर से पिपीलिकाओं की मस्तिष्क-रचना के सम्बन्ध में विवाद किया तथा ह्वीलर और एमरी दोनों ही से श्रेणीविभाग के सम्बन्ध में तर्कयुद्ध किया। अन्य महारथियों के भी विचारों में परस्पर घोर विरोध दिखाई पड़ा। उसके मूल में उनकी निजी सामाजिक आस्थाएँ तथा विषय की नवीनता थी। मुख्य विवाद तो यह खड़ा हुआ कि चींटियों के कुल पाँच उपवंश माने जायँ या आठ। कभी एक जाति या प्रजाति एक उपवंश में मानी जाती तो दूसरे विद्वान द्वारा वही किसी अन्य उपवंश में रक्खी जाती। केवल इन विभाजनों तथा नामकरणों में ही विरोध नहीं प्रकट होता, बल्कि पिपीलिकाओं के जीवन-व्यापार के वर्णन में भी विशेष अन्तर पाया जाता।

आज ये सब विवाद प्रायः दूर हो चुके हैं। उनके कार्यों का विस्तार उनकी सफलता का प्रतीक है। कार्लो एमेरी ने अन्य कार्यों में संलग्न रह कर भी बीच-बीच के समय को आजीवन पिपीलिकाओं के अध्ययन में व्यतीत किया। वह पिपीलिकाओं के श्रेणीविभाग

निर्धारित करने का प्रयत्न करता रहा जिससे उसे निरर्थक ही कड़ी आलोचना भी सहनी पड़ती। ह्वीलर इन सब महारथियों में शिरोमणि था, वह फोरेल की भाँति बहुमुखी प्रतिभाशाली था। उसका महानतम कार्य संयोगवश बेलजियम कांगो की पिपीलिकाओं का अध्ययन था। उसकी पुस्तक फोरेल की "पिपीलिकाओं का संघबद्ध जगत" नामक पुस्तक की भाँति ही अमर रचना है। फोरेल के समान ही उसने पिपीलिकाओं के सम्बन्ध में सैकड़ों शोध-लेख लिखे किन्तु अन्य महारथियों ने भी इसी प्रकार शोधलेख लिखे।

कार्लो एमेरी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने पिपीलिकाओं तथा उनके शिशुओं में पारस्परिक आहार सम्बन्ध क्या है तथा इस क्रिया का स्थान पिपीलिकाओं तथा उनके शिशुओं के ही मध्य नहीं। प्रत्युत प्रौढ़ पिपीलिकाओं के मध्य ही क्या है। वह प्राचीन साहित्य का निष्णात पंडित था। इस कारण इसका प्रभाव उसके शिष्यों पर भी पड़ता था। यह डोनिस्थार्पी का तो घनिष्ट मित्र था, परन्तु इसकी विचारधारा दूसरी ही थी। पाँचों महारथियों में से यही एक वैज्ञानिक ऐसा था जिसके अनेक शिष्य थे परन्तु उनमें से कितनों ही ने दुर्भाग्यवश पिपीलिका विज्ञान को अपना जीवन लक्ष्य नहीं बनाया और १९३७ में उसकी मृत्यु के पश्चात् इस विज्ञान का अनुशीलन आगे संचालित न रक्खा।

डोनिसथार्पी एक महान आत्मा था। उसका जन्म प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। वह बड़ी ही वैभवपूर्ण स्थिति में कई वर्षों तक रहता रहा किन्तु एक दिन दरिद्रनारायण का उस पर प्रकोप हुआ, दुर्भाग्य ने आ घेरा। उसका धन-वैभव जाता रहा। अपने पिपीलिका विज्ञान की जानकारी से वह थोड़ी बहुत जो कुछ भी आय कर सकता था, उससे निर्वाह करने का प्रयास करने लगा परन्तु उसके पास स्नातक की कोई उपाधि न होने से आय ही क्या

हो सकती थी ! उसको पिपीलिका जीवन का ज्ञान मैदानों में घूमते रहने से प्राप्त हुआ। उसने यह ज्ञात किया कि दास बनाने वाली तथा अस्थायी रूप से परोपजीवी रहने वाली पिपीलिकाएँ किस प्रकार उपनिवेश की पहले स्थापना करती हैं। वह भुनगों (भृंग) का भी पर्यवेक्षण करता रहता था। उसने पिपीलिकाओं तथा उनके अतिथियों की विशेष जानकारी प्राप्त की। बाद में वृद्धावस्था में श्रेणीविभाग का भी कार्य किया।

अपनी मृत्यु के कुछ ही पूर्व इस वर्ग के श्रेणीविभाग का प्रथम पूर्ण ढाँचा उसने प्रकाशित किया। उसे अपनी प्रारंभिक युवावस्था में हीडिलबर्ग के निकट जर्मनी की गंगा, राइन नदी को तैर कर पार कर लेने का बड़ा गर्व था, उसके पहले कदाचित किसी ने ऐसे बड़े नद को तैर कर पार करने का साहस नहीं किया था। १९२७ में उसकी महत्वपूर्ण पुस्तक ब्रिटिश पिपीलिकाओं पर प्रकाशित हुई जिसमें बहुत ही अधिक संगत तथा असंगत तथ्य ठूसे पड़े थे। उतनी सामग्री एकत्र करना उसके समान उद्यमी व्यक्ति का ही कार्य हो सकता था। १९२८ ई० में उसकी दूसरी पुस्तक "ब्रिटिश पिपीलिकाओं के अतिथि" प्रकाशित हुई। वाजमैन ने भी १९२५ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इन दोनों की ही पुस्तकें आज भी प्रमाणिक हैं। वाजमैन पिपीलिकाओं के अतिथियों के सम्बन्ध में सबसे श्रेष्ठ पर्यवेक्षक था। उसने उनकी सैकड़ों जातियों का वर्णन किया है। अपनी धार्मिक आस्था से अनुप्रेरित होकर इस जोसट सम्प्रदाय के पादरी ने "पिपीलिकाओं तथा उच्चतर जीवों का मनोविज्ञांन" नामक पुस्तक भी लिखी है। शोणितरक्त दासपोषक पिपीलिकाओं का अध्ययन तथा वर्णन तो उसने बड़े ही विशद तथा व्यापक रूप में किया है। पिपीलिकाओं के संघ अन्वेषित करने तथा अनुशीलन का उसे तथा फोरेल को श्रेय दिया जाता है।

पिछली शताब्दी के तीन अन्य शोधक महारथियों का नाम लिया जा सकता है। वे इन पाँचों महारथियों के निकटवर्ती पद प्राप्त करते हैं। संशी उत्तरी अफ्रीका का प्रेमी था। उसने मरुस्थलों की पिपीलिकाओं के ही अध्ययन में समय लगाया। चार्ल्स जेनेट फ्रांसीसी इञ्जीनियर था उसने साधारण रक्त पिपीलिका (मिरमिका रुब्रा) की आंतरिक रचना ज्ञात करने में सफलता प्राप्त की। उसका गवेषणा से आज भी हमें पिपीलिकाओं का मनोविज्ञान समझने में सहायता मिलती है। अर्न्स्ट ऐंड्री का भाई ह्यूबर के पिता की भाँति मधु-मक्षिकाओं का प्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता था। जेनेट ने ज्ञात किया था कि रानी पिपीलिका नवउपनिवेश स्थापन के समय अपनी पंखीय पेशियों से विकसित वस्तु पर जीवनयापन करती है। संशी ने पिपीलिकाओं के मार्ग-निर्देशक साधनों की महत्वपूर्ण गवेषण की। ऐंड्री ने ह्यूबर के पर्यवेक्षणों से बहुत आगे की ओर हमारा ज्ञान बढ़ाया कि पिपीलिकाओं का कीट-धेनुओं से क्या संबंध होता है। ये तीनों साधक फ्रांसीसी थे। इन्हें ह्यूबर की गवेषणाओं से अनुप्रेरणा प्राप्त हुई थी।

अँग्रेज वैज्ञानिकों ने दलवद्धगामी या सेना-पिपीलिका तथा फफूँद या कवक-उत्पादक पिपीलिकाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने कृषक पिपीलिका का भी पुनः अनुसंधान किया। एक साधक का नाम बेट्स प्रसिद्ध है। इसने १८६३ ई० में "आमेजन में एक जन्तुशास्त्री" पुस्तक में सौबा चींटों का वर्णन किया जो उष्ण कटि-बंधीय दक्षिण अमेरिका में वृक्षों के पत्ते काटकर बिलों में ले जाने के लिए प्रसिद्ध है। इसी कारण इसे पत्रकर्तनक पिपीलिका भी नाम मिला है। बेट्स के ही सहकर्मी बेल्ट ने पहले-पहल उन पिपी-लिकाओं के बिल का रहस्योद्घाटन किया तथा संसार पर प्रकट किया कि इन बोई हुई पत्तियों को चबा-चबाकर लुगदी बनाने के

बाद उसी पर ये फफूँद उगाती हैं। इस तथ्य का उल्लेख १८७४ में "निकारागुआ में एक जन्तुशास्त्री" नामक पुस्तक में उसने किया।

टी० एस० सेवेज नाम के अँग्रेज पादरी ने अफ्रीका ही दलबद्धगामी पिपीलिका का सबसे प्रथम वर्णन किया। इस बात का उल्लेख उसने १८४७ ई० में कीटविज्ञान परिषद्, इङ्गलैंड को लिखे एक पत्र में किया।

अन्नसंचयी पिपीलिका के अन्नसंग्रह कार्य का पर्यवेक्षण मोग्गरिज नामक वैज्ञानिक ने १८७१ ई० में किया और प्रत्यक्ष रूप से देखा कि मेस्सोर प्रजाति की एक पिपीलिका जाति यथार्थ में दाने संग्रह करती है और उसका आहार करती है। उसका वर्णन उसने १८७३ ई० में "अन्नसंचयी पिपीलिका तथा कपाटपाशीय मकड़ा" नामक पुस्तक में किया।

हेनरी सी० मेक्कूक को १८८२ ई० में मधुघटीय पिपीलिकाओं का रहस्योद्‌घाटन करने का श्रेय प्राप्त है। यह अमेरिका की एक सैनिक परिवार का सदस्य था। इसकी पुस्तक लन्दन से "मधु-पिपीलिका तथा पश्चिमी पिपीलिका" नाम से प्रकाशित हुई। उसने केवल इस बात का ही वर्णन नहीं किया घट रूप में उदर बनने के लिए किस प्रकार से आंतरिक अंगों का विकास होता है बल्कि कृषक पिपीलिकाओं के सम्बन्ध की भ्रांत धारणा का भी स्पष्टीकरण किया। उसने स्पष्ट ज्ञात किया कि पिपीलिकाएँ अन्नसंचयी तो होती हैं, परन्तु मनुष्यों की तरह उनकी खेती नहीं करतीं। इनके बिलों के पास शुद्ध रूप में इनके आहार वाले दानों के पौधे होने की बात सच नहीं थी। कई दशाओं में तो उनकी बाढ़ का पिपीलिकाओं से कोई सम्बन्ध भी नहीं था। यह बात दूसरी है कि नम दानों के फेंक दिए जाने पर उनकी बाढ़ हो जाय।

सर जान लुब्बक को वैज्ञानिक जगत अच्छी तरह जानता है।

ये बाद में लार्ड एवेबरी नाम से प्रसिद्ध हुए। पिपीलिकाओं के जीवन-क्रम के अध्ययन में इनका नाम भी अन्त में उल्लेख करना अत्यावश्यक है। इन्हें पिपीलिकाओं के सम्बन्ध में प्रयोग करने वाला प्रथम वैज्ञानिक कहना चाहिए। इन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि पिपीलिकाएँ किस प्रकार अपना मार्ग ढूँढ़ लेती हैं। उनकी सन्देश-प्रेषण क्षमता तथा बुद्धि का भी ज्ञान प्राप्त करने का इन्होंने अथक प्रयत्न किया। इसके लिए इन्होंने अनेक लम्बे क्रमिक प्रयोग किए। कई प्रयोगों में तो कुछ निकर्ष ही नहीं निकल सकता था किन्तु इतना तो इन्होंने निर्विवाद रूप में सिद्ध किया कि पिपी-लिकाएँ पराकासनी प्रकाश किरणें भी देख सकती हैं जो हमारी दृष्टि शक्ति के बाहर की बात है।

संसार के चींटी विज्ञान के अन्य साधकों की नामावली छोटी नहीं है। इन बहुसंख्यक साधकों में किनका नामोल्लेख किया जाय, किनका न किया जाय। जर्मनी के ब्रुन नामक वैज्ञानिक ने चींटियों की प्राचीनता के सम्बन्ध में विशद अनुशीलन किया, स्विटजर्लैंड के डी गीयर ने पहले पहले पिपीलिकाओं का प्रस्तरावशेष प्राप्त किया जो पथराई हुई प्राचीन गोंद या अंबर के अन्दर रक्षित प्राप्त हो सकते थे। पादरी फैरेन ह्वाइट ने १८६५ में "चींटी तथा उनका जीवनक्रम" नामक सुन्दर पुस्तक लिखी। इङ्गलैंड में पादरी डबल्यू० गोल्ड ने इङ्गलैंड की पिपीलिकाओं पर सबसे पहले १७४७ में पुस्तक लिखी। दक्षिणी अफ्रीका की पिपीलिकाओं के सम्बन्ध में आर्नल्ड ने एक पुस्तिका लिखी। अन्य कितने ही लेखकों ने पिपीलिकाओं को अपनी रचनाओं का आधार बनाने का भी प्रयास किया। आज तो सब देशों में पिपीलिका के जीवन-क्रम, श्रेणी-विभाग, जाति निर्णय के कार्य साधकों ने हाथ में लिए है।

आविष्कारकों की कहानी

इन जीवन-कथाओं में उन वातावरणों का मनोरम चित्रण है जिनमें आविष्कारकों को रह कर अपनी अनुपम बुद्धि तथा कार्य-शक्ति का उदाहरण रखना पड़ा होगा। बेल, एडिसन, मारकोनी आदि के नाम तो हमें जब-तब सुनने को भी मिलते हैं; परन्तु हम यह नहीं अनुभव करते कि किस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों से भी छिप कर, उनके तानों से बचने का उद्योग कर मारकोनी को रात-दिन ऐसी कल्पना को मूर्त्त रूप देने का साहस रखना पड़ा जिसे आज बेतार का तार कहा जाता है। इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त अपने पुत्र को मनोरंजन की सामग्री देने के लिए वयोवृद्ध डनलप को अकस्मात् पहिये की ठोस हाल के स्थान पर वायु भरी रबड़ नली रखने की सूझ उस समय विशेष महत्त्व की भले ही न जान पड़ी हो; परन्तु आज हमें उस घड़ी की स्मृति विशेष उत्प्रेरणा का कारण होती है। फोर्ड को अपनी भीषण आर्थिक विपत्ति तथा दर्जनों अभियोगों में पराजय से साहस छोड़ देने का एक भी क्षण आ सका होता तो आज हम फोर्ड द्वारा निर्मित इतनी सस्ती जनसुलभ मोटर गाड़ियाँ न देख पाते। विलियम फ्रीजी ग्रीनी का नाम आज फिर से स्मृत किया जाने लगा है जिसने चलचित्र का आविष्कार कर संसार को विलक्षण मनोरंजन की सामग्री उपस्थित किया; परन्तु अपने जीवन में दिवालिया बन कर वह अनेक बार जेल की हवा खाता रहा। इसी तरह सभी कहानियाँ विलक्षण हैं।

मूल्य २) रु०

किताब महल ❋ प्रकाशक ❋ इलाहाबाद

अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण-कार्य में यथाशि
सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अ
हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी उस सूची पर लिखा हुआ नहीं
जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं
आज ही एक कार्ड अपने नाम-पते सहित हमारे पास लिख भेजे
एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमि
रूप से विविध प्रकार के मनोरंजक साहित्य के—जिनमें उपन्या
(जासूसी और सामाजिक) कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य आ
भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अप
यहाँ के किसी भी पुस्तक-विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अग
कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे
स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मँगाने पर लगभग
रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक-विक्रेता
अनुरोध कीजिये कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्त
विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी भी बचत में सहायक होंगे।

(२) यदि कोई पुस्तक-विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे
आप उसका नाम-पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए
उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें

किताब महल ● प्रकाशक ● इलाहाबाद